अभयकुमार

महापुरुषों के चरित्र-2

आ० श्री वीरसेन सूरीश्वरजी म० सा०

तस्मै श्री गुरवे नमः

अभयकुमार चरित्र

(१)

श्रेणिक को रत्नों की प्राप्ति—

'अभयकुमार की बुद्धि हो,' इस उक्ति से अभयकुमार पूरे विश्व में विख्यात है। औत्पत्तिकी बुद्धि से अभयकुमार श्रेणिक महाराजा के ५०० मंत्रियों में प्रधान मन्त्री बना था। अभयकुमार को राज्य की नहीं संयम की चाहना थी। महर्षि बनकर मोक्ष जाने वाले अभयकुमार का अनुपम, अपूर्व आख्यान यहाँ पर प्रस्तुत है।

जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध भरत में मगध देश के मुकुट तुल्य राजगृही नगरी है। वैभार गिरि की गोद में बसी नगरी की शोभा तो देखते ही बनती है। दक्षिण में बहती गंगा नदी का मधुर, मंजुल कलकल निनाद वातावरण को सदा-आनन्दित बनाये रखता।

नगरी की समृद्धि की तो बात ही क्या करें ? ऊँचे-ऊँचे भवन, गगनचुम्बी महल नगरी की रमणीयता में चार चांद लगा

रहे थे। व्यापारियों ने इसे अपने वाणिज्य का केन्द्र स्थान बनाया था। मणि-मोती-हीरा-पन्ना आदि से समृद्ध धनिकों का वैभव नगरी की शान था। गगनचुम्बी, उन्नत शिखरों वाले भव्य जिनालय राजगृही नगरी की शोभा में चार चांद लगा रहे थे।

राजगृही नगरी में धीर, वीर, समर्थ महाराजा प्रसन्नजित का शासन था। सबल शत्रु समूह को जीतने में केशरीसिंह तुल्य तथा न्याय प्रिय राजा प्रजा के प्रिय थे। राजा के अन्तःपुर में अनेक रानियाँ थीं, जिनमें महारानी कलावती पट्टरानी थी। बुद्धिमान, शास्त्रज्ञ तथा शस्त्र कला निपुण, श्रेणिक आदि १०० पुत्र थे।

सुभाषितकारों ने ठीक ही लिखा है-जिसने प्रथम अवस्था में विद्या अर्जित नहीं की, द्वितीय अवस्था में धन अर्जित नहीं किया, तृतीय अवस्था में धर्म अर्जित नहीं किया, वह चतुर्थ अवस्था में क्या करेगा ?

मनुष्य जन्म पाने के बाद मानव को दो कलाओं में तो कुशल बनना ही चाहिये—(१) वह कला, जिससे जीवन सुख पूर्वक व्यतीत हो, (२) वह कला, जिससे मरण के पश्चात् सद्गति की प्राप्ति हो।

एक दिन महाराजा प्रसन्नजित को विचार आया कि मेरे १०० पुत्र बल व बुद्धि में समान ही लगते हैं। इनमें से राज्य के योग्य कौन है, यह तो परीक्षा करके ही ज्ञात करना होगा। जो विद्यावान, विनयवान व बुद्धिमान हो, उसे ही राजा बनाना उचित

होगा। मेरे रहते यह कार्य हो जाय तो अच्छा होगा। क्योंकि पिता को मृत्यु के बाद तो पुत्र अन्दर ही अन्दर लड़ने लग जायेंगे।

नोति शास्त्र में भी कहा है—देह नाश के बाद बुद्धि कहाँ से ? बुद्धि के बिना स्मृति कहाँ से, स्मृति के बिना ज्ञान कहाँ से व ज्ञान के बिना सद्गति कहाँ से ?

पुत्र-परीक्षा—

एक दिन राजा ने उत्तम पकवान (खाजा) एक बांस को टोकरी में भर कर रखे, पास ही एक नये घड़े में पानी भर कर एक कमरे में रखा। अपने १०० पुत्रों को बुलाकर राजा ने कहा—"देखो, आज तुम सबको इस कमरे में रहना है। टोकरी को खोले बिना पकवान खाना और मटका खोले बिना पानी पोना। किसी को भी भूखा-प्यासा नहीं रहना है।"

सब राजकुमार विचार में पड़ गये। किसी को कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। श्रेणिक कुमार ने अपने भाईयों से कहा—"मैं कहूं वैसा करो तो किसी को भूखा-प्यासा नहीं रहना पड़ेगा। नये मटके पर एक कपड़ा बांध लेना, धीरे-धीरे जब कपड़ा भीग जाय, तब उसमें से पानी पी लेना। पकवान की टोकरी को खूब हिलाना, इससे अन्दर रहे हुए खाजा का चूरा होकर बाहर गिरता रहेगा, उसे खाकर भूख मिटा देना।"

श्रेणिक के कहे अनुसार करने से सब राजकुमार भूख-प्यास को मिटा पाये। सब कुमार अपने पिता महाराजा प्रसन्नजित के पास गये। जब राजा ने पूछा—

"तुम लोग खा-पी चुके हो ?" तो सबने हामी भरी

"क्या मेरी शर्त का तुमने पालन किया ?"

"जी पिताजी।"

कुमारों ने जिस प्रकार भूख-प्यास मिटायी थी उस तरीके का बयान दिया।

महाराजा ने पूछा—"यह बुद्धिजन्य उपाय किसने बताया ?"

"श्रेणिक कुमार ने।"

राजा श्रेणिक कुमार की बुद्धि से अत्यन्त प्रसन्न हुए।

द्वितीय परीक्षा—

महाराजा प्रसन्नजित ने सुस्वादिष्ट खीर बनवाकर सब कुमारों को भोजन के लिये बिठाया। जैसे ही कुमार भोजन करने बैठे कि राजा ने वहां भूखे कुत्तों को छोड़ दिया। भौंकते हुए कुत्तों को देखकर सब राजकुमार अपनी-अपनी थाली छोड़कर चले गये। लेकिन श्रेणिक नहीं उठा। वह तो अपने भाईयों की थालियां कुत्तों के आगे रखता गया और स्वयं आराम से खीर का रसा-

स्वादन करते रहा। सब कुमार भूखे रहे, सिर्फ एक श्रेणिक ने भरपेट खीर खायी। यह बात जब राजा तक पहुंची, तो श्रेणिक की बुद्धि से प्रसन्न राजा ने कृत्रिम भृकुटि चढ़ाते हुए कहा—"श्रेणिक तो एकदम गँवार है, कुत्तों की पंक्ति में बैठकर खाता है। अन्य सब कुमार श्रेष्ठ हैं, पवित्र हैं।" अन्य कुमार खुश हो गये।

तृतीय परीक्षा—

तीसरी बार परीक्षा लेने हेतु राजा ने महल में आग लगवायी और कहा—"तुम्हें जो चीज अच्छी लगे, वह लेकर भाग जाओ।" सब कुमार तो कीमती हीरे, रत्न, मोती, माणेक आदि ले भागे, लेकिन श्रेणिक तो सिर्फ भम्भा लेकर भागा। राजा ने उसका उपहास करते हुए कहा—"तू तो यह भम्भा बजा-बजाकर घर-घर भटकता ही रहेगा। दूसरों ने जो तुच्छ वस्तु छोड़ दी, वही तूने ग्रहण की। तू तो मूर्ख है।"

इस प्रकार व्यंग्य करते हुए राजा ने अन्य सब पुत्रों को तो राज्य दिया, लेकिन श्रेणिक को राज्य नहीं दिया। राजा ने उसकी मजाक उड़ाते हुए कहा—"तू तो कुत्तों के साथ भोजन करता है परमान्न को चूरा करके खाता है, सार वस्तुओं को छोड़-कर तुच्छ वस्तुएँ ग्रहण करता है। अतः तू राजा बनने के योग्य नहीं है। तू तो वणिक की तरह मुष्टि बद्ध है, कन्जूस है, कुछ खर्च नहीं करता।"

ऐसे व्यंग्य बाणों ने श्रेणिक का दिल छलनी-छलनी कर दिया। स्वाभिमानी श्रेणिक ने सोचा—"इस अपमान से तो जंगल में रहना या मरना ही बेहतर है।" सिंह सम निर्भय श्रेणिक रात को किसी से बिना कुछ कहे खड्ग लेकर भाग्य के भरोसे परदेश की ओर चल पड़ा। श्रेणिक तो निर्भय था। क्योंकि वह शास्त्रज्ञाता था, मन्त्र-तन्त्रादि में प्रवीण था, युद्ध कला में निपुण था, सिंह तुल्य शूरवीर था। वह तो निर्भीकता से भयंकर जंगलों में से होते हुए आगे बढ़ता चला जा रहा था।

एक बार वह वज्रकर नामक पर्वत के पास आया। वहाँ के वातावरण से प्रमोदित होकर रात्रि में वहीं विश्राम किया। निद्राधीन होने पर रात में अधिष्ठायक देव ने कहा—"हे कुमार! यहाँ से दो कोस दूर नदी के किनारे हस्त-मिलाप के आकार में दो पीपल के वृक्षों का युगल है। उस वृक्षयुगल की एक शाखा पर एक पाषाण है, जिसमें अठारह महा प्रभाविक रत्न हैं। उन रत्नों के चमत्कार एक से एक बढ़कर हैं।

प्रथम रत्न के प्रभाव से सर्व जन वश होते हैं। दूसरे रत्न के प्रभाव से विष का नाश होता है। तीसरे रत्न के प्रभाव से क्षुद्र उपद्रवों का शमन होता है। चौथे रत्न के प्रभाव से राजा-मंत्री आदि सम्मान देते हैं। पाँचवें रत्न के प्रभाव से ऋद्धि सहित पुत्र की प्राप्ति होती है। छठे रत्न के प्रभाव से दिव्य भोगों की उपलब्धि होती है। सातवें रत्न के प्रभाव से जल को पार कर सकते हैं। आठवें रत्न के प्रभाव से मनुष्य महा विवेकी बनता है। नौवें

रत्न के प्रभाव से शरीर पर घाव नहीं होता। दसवें रत्न से गुरु के बिना विद्या सिद्ध होती है। ग्यारहवें रत्न के प्रभाव से शस्त्र का घात नहीं लगता। बारहवें रत्न से जन्मांध व्यक्ति देखने में समर्थ हो जाते हैं। तेरहवें रत्न के प्रभाव से अग्नि जलाती नहीं। चौदहवें रत्न के प्रभाव से हर वस्तु की परीक्षा की जा सकती है। पंद्रहवें रत्न के प्रभाव से भूख-प्यास शान्त हो जाती है। सोलहवें रत्न के प्रभाव से सिंह बाघ आदि हिंसक प्राणी नहीं मिलते।

सत्रहवें रत्न के प्रभाव से रूप-परिवर्तन कर सकते हैं। अठारहवें रत्न के प्रभाव से शरीर के सर्व रोग नष्ट हो जाते हैं तथा सर्व लोग नमस्कार करते हैं।

इसप्रकार रत्नों का प्रभाव बताकर अधिष्ठायक देव ने कहा—"हे कुमार ! तू विचक्षण है। पाषाण को ग्रहण कर उसमें से अठारह रत्न ले ले, उन पर नाम लिखकर, उन्हें सदा अपने पास रखना। उनकी प्रतिदिन पूजा करना तथा चित्त में मेरा नाम स्मरण करना। तू उस पेड़ की छाया में विश्राम करेगा कि पाषाण नीचे गिरेगा, उसे तू ग्रहण कर लेना। मेरी बात अक्षरशः सत्य समझना। तेरे भाग्य का सितारा चमकने वाला है। रत्नों का प्रभाव बीस साल तक बढ़ता जायगा और बाद में तो अत्यंत ही बढ़ेगा।

स्वप्न देखकर जागृत हुए कुमार ने पंच परमेष्ठि के स्मरण रूप नमस्कार मन्त्र का स्मरण किया और देव के कथ-

नानुसार आगे की ओर प्रयाण किया। नदी के किनारे वह हस्त मिलाप के आकार से खड़े वृक्ष के पास आया, वृक्ष पर धवल पाषाण देखा। वृक्ष को पूजकर विश्राम हेतु वृक्ष की छाया में बैठा, तभी वृक्ष की शाखा पर से पाषाण नीचे गिरा। श्रेणिक ने शीघ्र ही वह पाषाण ग्रहणकर उसमें से रत्न निकाले और सर्व रत्नों के विविध प्रभाव के अनुसार अलग-अलग चिह्न करके व्यवस्थित करके अपने पास रखे और आगे बढ़ने लगा। कहा भी है कि—
"पुण्यशाली के कदम-कदम पर निधान।"

कुमार सोचने लगा—सत्ता, सम्पत्ति, उत्तम कुल, भोग सामग्री, दीर्घ आयुष्य, सुन्दर स्वास्थ्य, यह सब धर्म का ही फल है।

हे परम प्रभु, मुझे इस अकेली बुद्धि के सहारे मत छोड़ देना, यह अभागी खुद तो भटकी हुई है ही, मुझे भी भटका देगी। मुझे तो प्यार का वरदान देना, जिसके सहारे अपने साथ दूसरों को भी तारता चलूँ।

(२)

बिकना चन्दन वृक्ष का

कुमार श्रेणिक नदी के किनारे पर पहुंचा। वहाँ उसने देव के कहे मुताबिक दो पेड़ों को आपस में लिपटे हुए खड़े देखा। पेड़ की डाली पर श्वेत पाषाण भी था। श्रेणिक को देव के दिये गये स्वप्न पर पक्का भरोसा हो गया।

उसने दो हाथ जोड़कर उस पाषाण को नमस्कार किया। पाषाण एकदम सीधे ही कुमार के समक्ष आकर गिरा। उसमें से एक के बाद एक रत्न बाहर निकलने लगे। कुमार ने उन रत्नों के प्रभाव को याद करके सभी रत्नों पर अलग-अलग निशान बना डाले। वह पाषाण आकाश में अदृश्य हो गया। कुमार ने उन रत्नों को अपने उत्तरीय वस्त्र में लपेट लिया और कमर पर कसकर बाँध दिया। कुमार की खुशी दुगुनी-चौगुनी हुई जा रही है। वह अपने मन में सोचता है—

'राज्य, सम्पत्ति, श्रेष्ठ भोगसुख, उत्तम कुल में जन्म, सुन्दर रूप, विद्वत्ता, दीर्घ आयुष्य और शरीर का आरोग्य—यह सब धर्म के ही फल होते हैं, ऐसा मैंने मेरे गुरुदेव से जो सुना है.... वह शत-प्रतिशत सही है।'

कुमार नदी के किनारे-किनारे चलने लगा। उसे अब जोरों की भूख लगी थी। उसने किनारे पर चम्पक, अशोक, पुन्नाग, माकन्द और रायन के पेड़ देखे। उसके मन को पेड़ भाये। वह उन पेड़ों के बारे में जानता था। किस पेड़ का फल खाया जा सकता है....और किस पेड़ का नहीं, यह वह भलीभांति जानता था। उसने जी भरकर फल तोड़े और पेट भरकर फल खाये। नदी का मीठा पानी पिया....और किनारे पर अठखेलियाँ करते मृगशावकों के साथ खेलता-खेलता वह आगे बढ़ा।

रात उतर आई जमीन पर। उसने नदी के किनारे पर ही एक सुहावने पेड़ की छाया में मुलायम पत्तों का बिछौना बनाकर आराम करने की तयारी की। परमात्मा का स्मरण करते-करते वह लेट गया। कुछ देर में तो श्रेणिक गहरी नींद लेने लगा। निर्भय और निश्चित आदमी को जंगल में भी मीठी नींद आ जाती है।

इस तरह दिन बीतने लगे। रातें गुजरने लगी। कुमार आगे ही आगे बढ़ता जाता है। पेड़ों के फल खाता है....नदी का मीठा जल पीता है....पर्वतों पर से, चट्टानों पर से गिरते और बहते हुए झरनों को देखता है....मयूरों का नृत्य देखकर उसका जी मचल उठता है। यह सुख....यह आनन्द....उसे लगता है इसके आगे राज-महल का सुख तो तुच्छ है.... ! ! !

एक ओर उछलती-कूदती नदी बह रही है... तो दूसरी ओर ऊँचे-ऊँचे पवतों की श्रेणियाँ सिमटी सी खड़ी हैं। बीच में कुमार

चला जा रहा है....। कभी गुनगुनाता है....कभी मुस्कुराता है.... कभी खामोशी की चादर में लिपट जाता है ।

एक बार सवेरे-सवेरे वह चल रहा था कि अनायास उसकी निगाहें एक पहाड़ी के शिखर पर जा गिरी ! वह देखता ही रह गया ! शिखर पर एक युवती-भील कन्या खड़ी थी । उसने शरीर पर मयूरपंख का सिंगार रचाया था । उसके पैरों में घुंघरूवाली पैंजनियां छुनक रही थी । उसने भी कुमार को देखा....वह वेग से नीचे उतरने लगी। पैंजनियों की खनखनाहट से पूरा जंगल मुखरित हो उठा ।

वह सुन्दर रूपसी भील कन्या कुमार के समक्ष आकर खड़ी रह गई । दोनों एक दूजे को जी भरकर निहारने लगे । श्रेणिक-कुमार का लुभावना रूप देखकर भील कन्या बहुत खुश हो उठी । वह आँखें नचाती हुई बोली —

'कुमार, आज तुम्हारे से खूबसूरत और सलौने युवक को पा कर मैं धन्य हो उठी हूं । इस प्रदेश का आधिपत्य मेरे पिता के हाथों में है । मैं उनकी इकलौती बेटी हूं । तुम्हें देखते ही मेरा मन तुम पर मोहित हो उठा है । मैं तुम्हारे साथ शादी करना चाहूंगी । अरे ....मन से तो मैं तुम्हारे साथ शादी कर ही चुकी हूं । इसलिए कुमार, तुम मेरे साथ प्यार की बातें करो....चलो, मेरे साथ चलो !'

कुमार मौन रहा। उसने भील कन्या के सामने देखा तो सही....पर स्मित तक किया नहीं। चुपचाप वह भील कन्या की बहकी-बहकी बातें सुनता रहा। भील कन्या कुमार की चुप्पी से अकुला उठी। उसकी आवाज में नाराजगी रिसने लगी।

कुमार, यदि तुम मेरे साथ शादी करोगे तो मेरे पिता तुम्हें इस इलाके का राजा बना देंगे। और यदि मेरी बात से इन्कार किया तो तुम्हें बुरी मौत मरना होगा। याद रखना....मैं तरह-तरह के मन्त्र-तन्त्र जानती हूं। ढेर सारी औषधियों का मुझे ज्ञान है! मेरे पास एक ऐसी औषधि है कि मैं चाहूं तो आदमी को जानवर बना दूं और जानवर को आदमी का रूप दे दू! एक दवाई खिलाकर आदमी को बन्दर बना दूँ तो वह बन्दर उछलता हुआ....कूदता हुआ मेरे पीछे ही चलता रहेगा। तीसरी दवाई से मैं बन्दर को मनुष्य भी बना सकती हूं।

मैं बाघ-सिंह से भी डरती नहीं हूं। मैं अकेली जंगलों में निर्भय होकर घूमती रहती हूं। भूत-प्रेत या पिचाश का मुझे भय नहीं है! चोर-लुटेरे या सांप-संपेरे भी मुझ डरा नहीं सकते! नदी में कितना ही पानी चढ़ा हो, मैं आराम से तैर सकती हूं। बड़े से बड़े हाथी को भी उसका कान खींच कर खड़ा रख सकती हूं....हाँ....बस एक ही अग्नि ऐसी चीज है....जिससे मैं दूर रहती हूं!

तुम जिस इलाके में खड़े हो, वह इलाका सौ कोस की लम्बाई का है। तुम भागकर भी कहीं नहीं जा सकते! इसलिए

मेरा कहना मानो और मेरे साथ शादी रचा लो। तुम चाहो या मत चाहो....मेरे साथ शादी किये बगैर तुम बच नहीं सकते !'

कुमार शांति से स्त्री की बातें सुनता रहा। उसने अपने चेहरे पर जरा भी घबराहट या बेचैनी की रेखाएँ उभरने न दीं। उसने अपने मन में सोचा—

यह स्त्री तो डायन सी है! इससे मैं शादी कैसे कर सकता हूं ? यह तो नीच जाति की है....ताकतवाली है....और धूर्त भी है। इसके साथ यदि शादी करूँ तो यह मुझे पूरा ही फँसा डाले ! और फिर इसके साथ शादी करने से मेरे उच्च कुल पर कलंक चढ़ेगा, मेरी उच्च जाति पर कलंक लगेगा। मेरा क्षत्रिय कुल भील कुल की बराबरी पर उतर जाएगा।

इससे शादी करूँ तो मुझे इसके हाथ से खाना-खाना पड़ेगा; इसके भील पिता को झुकना पड़ेगा, इससे तो मेरे महान् पिता का अपमान ही होगा ! नहीं, किसी भी हालत में मैं इसके साथ शादी नहीं कर सकता। उत्तम-अच्छे कुल में पैदा होकर जो लोग अधम के साथ दोस्ती रचाते हैं—रिश्ता बनाते हैं....वे भी अधम हो जाते हैं।

मुझे एक बार मेरे गुरु ने कहा था कि विधाता ने इस संसार में दुष्ट औरत के रूप में एक फांसी ही बनाई है....उसमें भले भोले लोग, जाने अनजाने में फँस जाते हैं। दुष्ट औरतें झूठ,

साहस, माया मूर्खता, अतिलोभ, निःस्नेह और निर्दयता—इन सात दोषों से भरी होती है। यह स्त्री तो है भी राक्षसी ही ! इससे तो दूर रहना ही अच्छा ! किसी भी कीमत पर इस औरत के फँदे से बचना होगा।

कुमार उस भील कन्या की ओर निगाह किये बगैर ही सीधा चलता रहा। धीरे-धीरे आगे बढ़ता रहा। उसने अपनी कमर में बन्धे हुए रत्नों को याद किया। उनके प्रभावों को याद किया। वह भील कन्या उसके पीछे-पीछे चलने लगी।

आगे बढ़ते-बढ़ते श्रेणिक ने दूर से जंगल में दावानल सुलगता हुआ देखा....देखते ही उसने तेरहवें रत्न का स्मरण किया और दौड़ता हुआ जाकर उस दावानल में कूद गया।

वह भील कन्या तो अग्नि से घबराती थी ! वह दूर ही खड़ी रही ! कुमार ने उसे आवाज लगाई....'ओ कन्या, यदि तुझे मेरे साथ शादी करना है....तो यहां पर चली आ।'

भील कन्या का चेहरा श्याम हो गया। वह अपने मन में सोचती है। 'मुझे पता नहीं था कि इस युवक के पास भी मंत्रशक्ति होगी....। यह तो बड़ा जादूगर है....आग में गिरकर भी जलता नहीं है ! मैंने बड़ी जल्दबाजी की। उसने मुझे ठग डाला। पर अब मैं वैसी गलती नहीं दोहराऊँगी। अब मुझे मेरे योग्य युवक मिलेगा तब मैं उसका विनय करूँगी। उसे डर लगे वैसी बातें

नहीं करूँगी। यदि मैं इस युवक के समक्ष मीठी जुबान में चिकनी-चुपड़ी बातें करके इसकी दासी बन गई होती तो? यह जरूर मेरे मोहपाश में बन्ध जाता! मैंने खुद अपने मुँह अपनी बड़ाई हाँककर सारा खेल बिगाड़ दिया। वह मंत्र-तंत्र का जानकार था। खैर, मैं खुद ही अभागिनी हूँ। अभागिन के हाथ में रत्न टिकेगा भी कैसे? मैंने मूर्खता की....मेरा सारा ज्ञान उसे बता दिया.... अब मैं क्या करूँ? कहां जाऊँ?' वह रोने-कलपने लगी। 'उसे अब रोक भी नहीं सकती!' यह समझकर वह पर्वत के शिखर पर जाकर वापस खड़ी रह गई।

श्रेणिक दावानल में से निकलकर सर पर पाँव रखकर भागा; कलकल बहती हुई गंगानदी के किनारे पर पहुंचा। नदी के किनारे पर एक बहुत बड़ा चन्दन का सूखा हुआ पेड़ उसने देखा। श्रेणिक फटाफट उस पेड़ पर चढ़ गया....जैसे ही श्रेणिक पेड़ पर चढ़ा कि वह बड़ा भारी वृक्ष टूटा और सीधा गंगा के प्रवाह में गिरा।

कुमार ने उसी वक्त सातवें 'जलतारक' रत्न को याद किया। पेड़ पर बैठा हुआ कुमार नदी में बहने लगा। जैसे किसी जहाज में बैठा हो....वैसी निश्चितता के साथ कुमार पेड़ पर जमा रहा।

एक के बाद एक यों दिन बीतने लगे। उसने पन्द्रहवें रत्न का स्मरण किया। न तो भूख सताती है....न प्यास याद आती है!

इस तरह पूरे २० दिन बीत गये, तब उस चंदनवृक्ष के साथ कुमार बेनातट नगर के किनारे पर जा पहुँचा।

चंदनवृक्ष किनारे पर अटक गया। वृक्ष की सुवास पूरे नगर में फैलने लगी। लोग सोचने लगे।

'इतनी मदमस्त चंदन की खुशबू कहां से आती है?' सभी लोग नदी के किनारे की ओर जाने लगे। देखते ही देखते हजारों स्त्री-पुरुष चदनवृक्ष के पास एकत्र हो गये।

एक धनाढ्य नागरिक ने कुमार से पूछा।

'ओ व्यापारी, इस चंदनवृक्ष की कीमत क्या है?'

कुमार ने कहा : 'यह पेड़ मैं तो सोने के बराबर तोलकर दूंगा। इतना बड़ा और भारी चंदनवृक्ष तो किसी राजा के खजाने में भी देखने को नहीं मिलता है!'

लोग काफी एकत्र हो गये थे। नगरसेठ ने सोचा : 'लोभ-लालच से प्रेरित होकर ये सारे लोग चंदनवृक्ष को लूटने न लग जाए तो अच्छा!' इसलिये नगरसेठ ने ऊँची आवाज में घोषणा की :

'ओ नगरवासी भाईयों, अब तुम यहां से दूर खिसको! यह जवान व्यापारी अकेला है। और अपन तो बहुत लोग हैं! इसका जरा सा भी चंदन यदि चोरी हुआ तो वह अपनी चोरी

कही जायगी । यह व्यापारी है....अपन भी व्यापारी हैं । इसलिए यह परदेशी व्यापारी अपना साधर्मिक ही माना जाएगा । कोई भी इस चंदनवृक्ष को हाथ नहीं लगाएगा । यदि कोई इसे छुआ तो वह चोर माना जाएगा । राजा उसे सजा करेगा ।

नगरसेठ की घोषणा सुनकर सभी लोग अपने अपने घरों की ओर चल दिये । जिन्हें चंदन खरीदना था—वे व्यापारी ही वहाँ पर खड़े रहे । उन्होंने कुमार से कहा :

'नौजवान व्यापारी हम लकड़ी काटने के लिये आरी, कुल्हाड़ी वगैरह साधन ले आते हैं....बड़ा तराजू भी साथ ले आयेंगे....एक पल्ले में चंदन व दूसरे में सोना रखकर हम तेरी इच्छानुसार चंदन खरीदेंगे ।'

कुमार श्रेणिक प्रसन्न हो उठा ।

पूरा चंदनवृक्ष गिनती की पलों में बिक गया ।

उसे काफी सोना मिला । उसने सोने के बदले में कीमती रत्न खरीद लिये । व्यापारी लोग चंदन ले लेकर अपने अपने घर को चल दिये ।

श्रेणिककुमार ने सोचा ।

मैं यहाँ आया हूँ... तो इस नगर को घूमघाम कर देख भी लूं ! पर अब मेरे पास लाखों की कीमत के रत्न हैं....और लोग मुझे जान भी गये हैं । मैं अकेला हूँ । शायद कभी कोई धूर्त लोग लोभ के कारण मुझे लूटने का प्रयास भी करे ! इसलिये बेहतर

होगा कि मैं रत्न के प्रभाव से अपना रूप बदल डालूं !' उसने सत्रहवें रत्न की स्मृति की....उसका रूप बदल गया। उसने दर्पण में देखा....अपना बदला हुआ रूप देखकर वह हँस पड़ा !

उसने सभी रत्न बराबर सम्हालकर अपने पास रखे थे।

उसने नगर में प्रवेश किया। नगर के राजमार्ग पर चलते-चलते उसने एक बड़ी दुकान देखी...पर दुकान पर ग्राहकों की आवाजाही खास थी नहीं। उसने सोचा : चलो.... थोड़ी देर इस दुकान पर सुस्ता लूं।' वह दुकान धनसेठ की थी। कुमार दुकान पर जाकर बैठ गया।

अभी तो पाँच मिनट ही हुए थे कि इतने में तो धनसेठ की दुकान पर ग्राहकों का टोला इकट्ठा हो गया। धनसेठ को उस दिन काफी कमाई हुई। धनसेठ चकोर थे....उन्होंने कुमार को दुकान के भीतर बैठा हुआ देखा। उन्होंने सोचा :

यह युवक भाग्यशाली लगता है ! इसके पुनीत आगमन से ही मुझे आज इतनी कमाई हुई है। वर्ना एक दिन में इतने रुपये मैंने कब कमाये थे ! देव के द्वारा दिये गये स्वप्न के मुताबिक ही यह युवान आया लगता है।'

धनसेठ ने कुमार से कहा :

'परदेशी जवान ! देख....इधर एक बर्तन में मींढ़ल के फल हैं, दूसरे में रोहिणी वृक्ष की छाल है.... तीसरे बर्तन में यव है....यह सब मैं कल ही खरीद कर लाया हूं। इधर यह गलोसत्व.... कचूरा वगैरह भी चौथी छाबड़ी में है। त्रिफला, सूंठ, सिंधव

वगैरह पाँचवें बर्तन में है। कुमार, इसमें से तुझे जो भी चाहिए, बिना झिझक या संकोच के तू ले ले।'

कुमार जरा हँस दिया। उसने कहा :

'सेठ, तुम तो बड़े उदार नजर आते हो.... पर मेरे पर इतना प्यार बरसाने का कुछ कारण? हालांकि, लगता है.... उदारता तुम्हारा स्वभाव ही होगा।'

धनसेठ भी मुस्कुरा उठे। उन्होंने कहा :

'परदेशीकुमार, इस दुनियां में सभी को स्वार्थ ही प्रिय है....परमार्थ तो किसी बिरले को ही प्रिय होता है!'

'पर सेठ, तुम्हें मुझ से क्या स्वार्थ है? मैं एक अनजान परदेशी ठहरा!' कुमार ने पूछा।

सेठ ने कहा :

'कुमार, कल रात में किसी देव ने आकर स्वप्न में मुझ से कहा : 'ओ धनसेठ सवेरे सूर्योदय के बाद ढाई घंटे बीतने पर पूर्व दिशा की ओर से कोई बीस साल की उम्र का सुन्दर युवान तुम्हारी दुकान पर आएगा। उसने सफेद कपड़े पहन रखे होंगे। वह युवान तेरी सभी आपत्तियों को दूर करेगा।' ऐसा स्वप्न देकर देव तो बरसाती बिजली की भांति अदृश्य हो गया।

सुबह उठकर मैंने सोचा कि 'यह स्वप्न उत्तम है। स्वप्नशास्त्र के मुताबिक देव, ब्राह्मण, गाय, माता, पिता, साधु

और राजा इतने लोग स्वप्न में जो कुछ कहें, वह सही समझना। सच मानना।'

कुमार ने पूछा : 'सेठ, तुम स्वप्नशास्त्र जानते हो क्या?'

सेठ ने कहा :

'हां भाई! एक ज्ञानी महात्मा ने मुझे स्वप्नशास्त्र सिखलाया है। तुझे सुनना है....? स्वप्न में गाय, घोड़ा, हाथी और देव काले रंग के दिखाई दे तो अच्छा... इसके अलावा यदि कुछ काला दिखाई दे तो वह नुकसान करनेवाला होता है। कपास, छाछ, नमक यदि सफेद दिखाई दे तो बुरी....इसके अलावा जो सफेद दिखाई दे वह अच्छा होता है! सपने में जो गीत गाता है....सवेरे उठकर उसे रोने के समाचार मिलते हैं! स्वप्न में जो नाचता है....सवेरे उठने पर उसके हाथ पैरों में बेड़ियां लगती हैं। स्वप्न में जो हँसता है....वह जगकर रोता है। जो स्वप्न में पढ़ाई करता है....उसके जागृत होने पर आपत्ति घेर लेती है।'

कुमार ने सोचा :

'ये सेठ भोले हैं....जो जानते हैं....वह सब कह देते हैं.... कुछ भी छुपाते नहीं हैं!'

कुमार ने दुकान के पिछवाड़े के हिस्से में एक वस्तु का ढेर देखा और चौंकते हुए सेठ से पूछा :

'सेठ, यह क्या है? किसकी है यह?'

(३)

सुनन्दा

धन सेठ ने कहा :

'परदेशी कुमार, यह तो एक जहाज है। कुछ दिन पहले हुई एक दर्दनाक एवं बड़ी शर्मनाक कहानी इसके पीछे जुड़ी हुई है!

यह जहाज समुद्र में जा रहा था। चोरों ने उस जहाज को पकड़ लिया। जहाज के कुछ आदमी तो जान बचाने को समुद्र में कूद गिरे, जबकि कुछ चोरों के हाथ पकड़े गये। चोर लोग जहाज को इस नगर के किनारे पर खींच लाये।

चोरों का सरदार मेरे पास आया और ढेर सारी कीमती वस्तुओं से लदे हुए इस जहाज का मेरे साथ सौदा किया। मुझे तब मालूम नहीं था कि यह चोरी का-लूट का जहाज है! मैंने तो कीमत देकर जहाज खरीद लिया।

उस जहाज के जो कुछ आदमी समुद्र में कूद गिरे थे.... उनमें से दो-पाँच व्यक्ति बच गये। तैरते हुए हमारे नगर के किनारे पर आ पहुँचे। उन्होंने राजा से जाकर अपनी जहाज की लूट के बारे में शिकायत की। राजा ने जहाज की तलाश करवाई। जहाज तो मेरे पास था। राज मेरे पर बड़े नाराज हुए....मुझे कड़ी सजा दी। मेरा नगरसेठ का पद छीन लिया।

मेरी सारी धनसम्पत्ति ले लो। सोना-चाँदी....जवाहरात, गहने सब ले लिये। अरे, जहाज में जो सम्पत्ति थी वह भी राजा ने अपनी तिजोरी में भर ली। केवल उस जहाज में जो धूल थी....रेत थी....वह यों की यों पड़ी रहने दी ! मेरी भयंकर तौहीन हुई। सब के सामने मेरा अपमान हुआ। मेरी इज्जत मिट्टी में मिल गई मैं उस जहाज को यहां पर ले आया हूं....और दुकान के पीछे के भाग में रख छोड़ा है ! और तो क्या करूँ ? जहाज में रेती के बोरे भरे थे....उसमें से कुछ रेत निकाल कर मैंने इस दुकान के आगे डलवा दी....ताकि बारिश के दिनों में कीचड़ नहीं हो ! बाकी के सब बोरे दुकान के कोने में ढेर करके रख दिये हैं !'

फिर इस जहाज का क्या करोगे ?' कुमार ने पूछा।

'पाँच-सात दिन में जहाज को नदी में बहा दूंगा....उसे रख कर करूँ भी क्या ? कुमार, वास्तव में मेरा नाम 'धन' है.... फिर भी आज मैं निर्धन हो गया हूँ। लोग मेरी मजाक करते हैं।

'यह धन सेठ चोरों का जोड़ीदार है' वैसा इल्जाम मढते हैं। यह सुनकर कुमार, शायद तुम भी मुझ पर हँसोगे....पर मैं क्या करूँ ? मुझे कुछ सूझता ही नहीं ! मेरी तो अक्ल ही काम नहीं करती ! और तो और, राजा अब मेरी दुकान....मेरा घर लेने का भी इरादा करता है ! क्या करूँ ? मुझे गाँव छोड़कर चले जाना होगा ! जिस नगर में मैंने हवेली बनवाई....धन्धा-धापा करके लाखों रुपये कमाये....नगरसेठ की पदवी प्राप्त की....उसी नगर में आज मुझे रूखा-सूखा खाकर ठण्डा पानी पीना पड़ता है....

फटे हुए कपड़े सी-सी कर पहनने पड़ते हैं। मन ऐसा होता है कि आत्महत्या करके जिन्दगी को समाप्त कर दूँ।

कुमार इस दुनियां में बगैर पैसे के आदमी शोभा नहीं देता! नीतिशास्त्र में कहा है कि वीरान जगल में रहना बेहतर है, बजाए निर्धन स्थिति में स्वजनों के बीच रहने के!'

बात करते-करते तो धन सेठ की आँखें आँसुओं से गीली हो उठी। यह देखकर श्रेणिककुमार का कोमल हृदय दुःखी दुःखी हो उठा! उसके मन में धन सेठ के लिए सहानुभूति पैदा हुई। उसका मन बड़ा ही कोमल था।

ज्ञानी पुरुषों ने कहा है :

कोमल चित्त, मधुर वचन प्रसन्न दृष्टि, क्षमायुक्त शक्ति, निष्पाप बुद्धि, परोपकार करने वाली सम्पत्ति....शीलयुक्त रूप, अभिमान बिना की विद्वत्ता और नम्रता सभर बड़प्पन—ये नौ बातें अमृत के कुण्ड जैसी होती हैं।

कुमार ने धन सेठ से कहा :

'सेठ, तुम्हारे पास ढ़ेर सारी सम्पत्ति होने पर भी तुम मौत क्यों मांग रहे हो? मेरी समझ में नहीं आता!'

'कुमार, तुम धन की बात परे रहने दो....मेरे घर में तो खाने के लिए अनाज भी पूरा नहीं है!'

कुमार ने कहा :

सेठ, मेरी एक बात मानों, इस जहाज में जो रेत है.... वह वास्तव में धन ही है। तुम इसको सम्हाल कर रखो। तुमने ये दुकान के आगे जो रेत बिछा रखी है....वह भी कीमती है....रात में उसे एकत्र करके दुकान के कोने में बोरा भर कर रख देना। आगे जाकर यह रेत धन होने वाली है !

और....यह लो, मैं तुम्हें रत्न देता हूँ....। तुम इससे धन्धा करना व्यापार करना। तनिक भी चिन्ता करना मत। राजा खुद खुश होकर तुम्हारे घर पर आएगा ! और तुम्हारे स्नेही-स्वजन भी दौड़े-दौड़े आयेंगे।

मैं दूसरे गाँव-नगर में घूमकर वापस आऊँ....तब तक ये रत्न तुम्हारे पास ही रखना।'

सेठ ने चिंतित स्वर में कहा :

'कुमार, यह तुम क्या बोल रहे हो ? तुमने जाने की बात कही मेरा दिल तो दहल उठा है तुम्हारी बात सुनकर ! नहीं, तुम कहीं पर भी जाने की बात मत करो ! तुम्हारी मीठी और सहानुभूतिभरी वाणी से तो मुझे कितनी शांति मिली है कितना बल मिला है। मुझे लगता है कि मैंने आपत्तियों का दरिया पार कर लिया है ! अब तुम मुझे क्या वापस दुःख के सागर में फेंक देना चाहते हो ? नहीं... नहीं....अच्छे-गुणीलोग ऐसा कभी नहीं करते ! तुम तो वास्तव में कल्पवृक्ष की भाँति हो ! तुम यदि चले जाओगे तो यह धूल-धूल ही रह जाएगी, वह कभी धन नहीं हो सकती !

और कुमार, यह धूल-रेत बेचने से जो भी लाभ होगा उसमें तुम्हारा आधा हिस्सा रहेगा। यदि तुम यहां नहीं रहना चाहते तब फिर मैं भी जीकर क्या करूँगा ? मुझे तुम्हारे रत्न नहीं चाहिए। मैं तो इस नदी में गिरकर आत्महत्या कर लूँगा ! तुम्हें जाना है तो खुशी से चले जाओ !'

सेठ की दर्दभरी विनती सुनकर कुमार का दिल भर आया। उसने कहा।

'सेठ, एक शर्त पर मैं यहाँ रहना पसन्द करूँगा !'

'अरे, एक क्या....अनेक शर्त मेरे सर आँखों पर....यदि तुम यहाँ रहना कबूल करते हो तो !'

कुमार ने कहा : 'तुम कभी भी मुझसे नहीं पूछोगे कि मेरे माता-पिता कौन है ? मेरा गाँव कौन सा है....और मेरा कुल कौन सा है ? बोलो, है ये सारी शर्तें कबूल ?

हाँ....तुम मुझे गोपाल कहकर बुलाना....समझना यही मेरा नाम है !'

सेठ ने कहा : 'बिलकुल कबूल है तुम्हारी शर्तें ! में तुम्हें कुछ भी नहीं पूछूंगा। मुझे क्या मतलब है....तुम्हारे माता-पिता या तुम्हारे गाँव के नाम से ? मुझे तो तुम्हारी बुद्धि की जरूरत है....! तुमने इस रेत में सोना देखा है....तुम्हीं इसे बेचना। जो भी अपन कमायेंगे, आधा-आधा बांट लेंगे !'

अभी तक न कुमार ने न सेठ ने दातुन भी किया था! दातुन करने का समय कभी का हो चुका था।

सेठ की लड़की, जो कि युवानी की दहलीज पर पाँव रख रही थी, वह एक दातुन व पानी का लौटा लेकर दुकान में आई। वहाँ उसने कुमार को देखा :

'यह कोई मेहमान लगते हैं.' सोचकर लड़की ने दातुन को चीरकर दो टुकड़े किये और सेठ व कुमार को दिये। दोनों ने दातुन-कुल्ला वगैरह किया। दातुन करते हुए कुमार की निगाहें सेठ की लड़की की निगाहों से मिली। पहली ही नजर में दोनों के दिल में स्नेह के अंकुर फूट निकले! लड़की तो घर में चली गई।

दातुन-पानी करके सेठ व कुमार सेठ ने दुकान पर ही थोड़ा-थोड़ा दूध पी लिया।

सेठ ने कहा : 'कुमार, तुम यहां पर ही बैठो, मैं घर-पर जाकर वापस आता हूं।'

कुमार दुकान पर बैठा।

सेठ घर में गये, इतने में सेठ की बेटी ने सेठ को एक कोने में ले जाकर कहा :

'पिताजी, मुझे आप से एक बात कहनी है। हाँलाकि मुझे ऐसी बात करते हुए शरम आती है....परन्तु मन मानता ही नहीं है बात किये बगैर।'

'बेटी तेरे मन में जो भी है....वह मुझे बता दे....इसमें तनिक भी संकोच रखने की जरूरत नहीं है! बोल, तुझे क्या कहना है?'

'पिताजी, अपनी दुकान पर जो परदेशी युवान आया है....उसे पहली नजर देखते ही मेरे मन में न जाने क्या हो रहा है! समझ में नहीं आता....मैं क्या कहूं? मुझे वह मन ही मन अच्छा लगने लगा है—। मैंने तो मन ही मन नक्की कर लिया है कि यदि मैं शादी करूँगी तो इस युवक के साथ ही....यदि आप इस युवक के साथ मेरी शादी मंजूर नहीं करेंगे तो फिर मैं संसार का त्याग करके साध्वी हो जाऊँगी!'

सेठ ने कहा: 'पगली, क्या बक रही है तू? कुछ तुझे अता-पता भी है? यह युवक तो दूर देश से आया हुआ है!....अभी तो यह अनजान परदेशी है! मैंने इससे ज्यादा बातचीत भी नहीं की है! अभी तो तू जा....और घर में जाकर इस मेहमान के लिए भोजन का प्रबन्ध करने के लिए तेरी माँ से बोल!'

सुनन्दा दौड़ती हुई....घर में अपनी माँ के पास गई! एक ही सांस में माँ से कहने लगी:

'माँ, अपनी दुकान पर दूर देश से एक परदेशी मेहमान आया है.... उसके लिए आज बढ़िया से बढ़िया खाना बनाने का है!'

माँ ने कहा:

'बेटी, बढ़िया खाना बनाने के लिए बढ़िया चीजें चाहिए ! घी चाहिए.... शक्कर चाहिए.... बादाम और इलायची चाहिए.... बेटी, अपने पास पैसे कहाँ है ?'

सुनन्दा ने कहा ।

'माँ.... मेरी एक बात सुन ! तू मुझे कभी-कभी मिठाई खाने के लिए पैसे देती थी ना ? मैंने वह पैसे बचाए रखे हैं.... वे सारे के सारे पैसे में तेरे को दे देती हूं....। तू उनसे बढ़िया-बढ़िया चीजें ले आ और मेहमान के लिए अच्छा-मजेदार खाना तैयार कर दे !'

'अरे.... वाह रे.... मेरी लाड़ली ! क्या बात है ? आज इतनी उदार हो चली है ! वैसे तो कभी मैं खुद पैसे मांगती हूं तो तू मुझे ठेंगा बताती है.... नाक भौं सिकोड़ती है....और आज खुद सामने चलकर मुझे पैसे दे रही है....! क्या हो गया जो उस पर-देशी के लिये तेरे मन में इतना स्नेह उभर आया है !'

'माँ, सच कहूँ ?'

'हाँ, बोल ना !'

'माँ.... मैं उस परदेशी युवान का मन से वरण कर चुकी हूँ ! शादी करूँगी तो उसी के साथ ! वर्ना मैं संसार का त्याग करके साध्वी बन जाऊँगी !'

सुनन्दा की बहकी-बहकी बात सुनकर उसकी माँ गुस्से से बौखला उठी। चीखती हुई बोली :

'मरी.... तुझे कुछ लाज-शरम है भी या नहीं ?

तू दुकान में गई हो क्यों ? वहाँ तेरा काम क्या था ? तू हर किसी सुन्दर युवक को देखेगी और शादी करने को तैयार हो जाएगी !

हाय....हाय ! तू मुई ! हाथ से ही गई ! पर याद रखना....इस तरह बेशरम होकर जो लड़कियां बकवास करती हैं.... अन्त में वे दुःखी-दुःखी होती हैं ! तू तो अपने ऊँचे कुल में पैदा हुई है.... फिर भी तू बेहया होकर बकवास कर रही है.... कहाँ गई तेरी लाज शरम ?'

सुनन्दा ने कहा :

'ओह माँ ! तू शांत हो....! पहले कभी मैंने तुझे इतना भयंकर गुस्सा करते हुए नहीं देखा ! आज क्या हो गया तुझे ? तू ऐसी बुरी बात मत कर ! मैं तेरी पुत्री हूँ। मैंने कुछ भी गलत कार्य नहीं किया है ! तू और मेरे पिताजी मुझे इजाजत दोगे तो ही मैं उस युवान के साथ शादी करूंगी—अन्यथा दीक्षा ले लूंगी.... यह मेरा पक्का निर्णय है।'

माँ—बेटी की बात चल रही थी कि धनसेठ आ पहुंचे।

श्रेणिककुमार भी घर के आंगन में पहुंचा। धन सेठ ने माँ—बेटी का वार्तालाप सुना था। अपने मन में तनिक सोचकर उन्होंने सेठानी से कहा :

'सुनन्दा की माँ, यह श्रेष्ठ वर [श्रेणिककुमार की ओर उंगली करके] अपने घर पर आया है। इधर अपनी बेटी भी विवाह

लायक हो गई है। इन दोनों की शादी रचा दी जाए तो कितना अच्छा ! मुझे तो यह जोड़ी पसन्द है ! जैसे कि चन्द्र और रोहिणी ! जैसे रति और कामदेव ! जैसे कृष्ण और रुक्मिणी जैसे इन्द्र और इन्द्राणी !

सुनन्दा की माँ ! योग बड़ा दुर्लभ प्राप्त हुआ है। शुभ कार्य में तो सैंकड़ों विघ्न आते रहते हैं.... पर सज्जनों को साहस करना चाहिए ! हाँ.... एक बात है.... इस परदेशी का गाँव-गोत्र या माता-पिता कौन हैं – यह मैं जानता नहीं हूँ.... उसे मैं पूछने वाला भी नहीं। चूंकि इसी शर्त पर वह अपने घर पर आया है !'

सेठानी तो चुप रही.... पर सुनन्दा बोली :

'पिताजी, छोटे मुँह बड़ी बात लगे तो मुझे माफ करना। पर मैं भी न तो उनके गांव का नाम जानना चाहती हूँ.... न मुझे उनके माता-पिता का नाम जानना है.... इनके कुल-गोत्र से मुझे कुछ वास्ता नहीं है ! यदि वे मेरा स्वीकार करें, मुझे उनके साथ शादी करनी है, अन्यथा पिताजी, मुझे साध्वी हो जाने दो ! मुझे दीक्षा दिलवा दीजिए।'

सेठानी ने कहा : 'बेटी, तेरे पिताजी और मेहमान पहले स्नान कर लें.... देव पूजा कर लें, भोजन कर लें.... इसके बाद आराम से बैठ कर सारी बात करेंगे।'

सेठानी ने मेहमान को एडी से चोटी तक सरसरी निगाह से देखते हुए कहा। उसके मन को भी कुमार अच्छा लग लगा था।

सेठ और कुमार ने स्नान करके देवपूजा की और फिर साथ में भोजन करने के लिए बैठे। सेठानी ने बड़े स्नेह के साथ दोनों को अच्छा-बढ़िया खाना बनाकर खिलाया। दोनों ने शांति से भोजन किया। भोजनोपरांत दोनों चित्रशाला में जाकर बैठे।

सेठ ने कुमार से कहा :

'कुमार तुमने मेरे यहाँ पर आकर बहुत बड़ा उपकार किया है.... फिर भी अभी एक और उपकार तुम्हें मुझ पर करना होगा।'

कुमार बोला :

'सेठ.... मैंने कोई उपकार नहीं किया है ! इसमें उपकार काहे का ? मैंने तो मेरा कर्त्तव्य निभाया है ! मेरे लायक कुछ भी कार्य हो तो खुशी के साथ कहें.... मैं मेरी ओर से पूरी कोशिश करूँगा आपका हर काय करने की !'

सेठ ने कहा :

मेरी बेटी सुनन्दा को स्वीकार करें। वह तुम्हें दिल से चाहती है ! अरे ! मन ही मन तो वह तुम्हारा वरण कर ही चुकी है। अब यदि तुम उसके साथ शादी करने से इन्कार करोगे तो वह संसार का त्याग करके साध्वी बन जाना पसन्द करेगी.... पर और किसी के साथ वह शादी का विचार भी नहीं करेगी !'

कुमार सोच में डूब गया ! 'लड़की विवेकी है.... धर्म की रूचिवाली है.... और शीलवती है !' उसके दिल में सुनन्दा के प्रति

स्नेह तो पैदा हो ही गया था ! फिर भी लड़की के दिल की बात जानने के लिए.... उसने अपने मनोभावों को छुपाते हुए सेठ से कहा :

महानुभाव यह तुम्हारी लड़की तो कुछ पागल सी लगती है....। अरे ....मेरा नाम-ठाम जाने बिना कुल और गोत्र जाने बिना मेरे साथ शादी करने की बात कर रही है.... यह क्या उसका पागलपन नहीं है ? यह तो पूरी जिन्दगी का सवाल है.... इसलिए पूरी संजीदगी से सोचना चाहिए।'

इतने में सुनन्दा और उसकी माँ भी आकर समीप में नम्रतापूर्वक बठ गये। कुमार की बात सुनकर सुनन्दा नीची निगाहें रखती हुई बोली :

पिताजी ठीक है.... उन्हें जो कहना हो सो कहें.... मुझे पागल कहे या कम अक्ल की मानें... पर मेरा भी एक सवाल है.... क्या राजहंस का भी कोई कुल पूछने जाता है ? पिताजी उनकी भाषा.... उनकी आकृति ही उनकी उत्तमता की सूचक है !'

कुमार मन में सोचता है :

'सचमुच यह लड़की तो राजहंसी जैसी ही है ! राजहंसी को जसे मानसरोवर ही भाता है.... वैसे ही यह लड़की मुझे पसंद कर रही है। उसे मेरे से भीतर का सच्चा प्रेम हो गया है ! फिर भी.... मैं इससे पूछूं तो सही कि मेरे साथ ही शादी करने की जिद का कारण आखिर क्या है ?'

कुमार ने सुनन्दा से कहा :

'कुमारी.... मैं तो अनजान परदेशी हूँ.... आज यहां तो कल कहां ? मेरा मिलना तो बादलों की छाँव सा है ! मेरे साथ शादी रचाने में फायदा क्या होगा ?'

सुनन्दा का चेहरा चमक उठा.... उसने कहा :

'आपकी बात सही है....बादलों के आधार पर ही तो सूरज और चाँद हैं। बादलों के आधार पर ही बारिश निभती है.... बादलों के सहारे ही आकाश के सारे तारे हैं ! वैसे मैं भी आपके आधार पर ही हूँ.... इसलिए मेरा स्वीकार करो.... और आपके अपने परिवार का निर्माण करो !'

श्रेणिक ने कहा :

'सुनन्दा.... मेरे साथ तेरी शादी एक रुलाने वाला सपना बनकर रह जाएगी ! शादी हुई कि चार छह दिन में तो मैं यहाँ से परदेश की ओर प्रयाण कर जाऊँगा.... रमते योगी और परदेशी का क्या भरोसा ? मैं चला गया तब फिर तेरा क्या होगा ?'

सुनन्दा ने उतनी मजबूती के साथ कहा :

'कुमार.... मैं तो संसार को छोड़कर दीक्षा लेने का ही सोच रही थी.... बचपन में ! यह तो अचानक.... तुम्हारा मिलना हुआ.... तुम्हें देखा....तो लगा तुम से जनम-जनम का कोई नाता बाकी है.... पुरानी प्रीत के गीत फिर झनझना उठे और मैं मन ही

मन तुम्हें वरण करने का संकल्प कर बैठी.... शायद शादी के बाद यहां से दूर कहीं चले भी जाओगे.... तो मैं तुम्हारी यादों में अपनी जिन्दगी गुजारूंगी....! शीलव्रत का पालन करूंगी ! मैं तुम्हारी राह में पत्थर नहीं बनूंगी ! निश्चिंत होकर तुम परदेश चले जाना !'

सुनन्दा का अडिग निर्णय व संकल्प देखकर कुमार मन ही मन प्रसन्न हो उठा। उसने सेठ से कहा :

'श्रेष्ठिवर्य अभी जो समय है.... वह श्रेष्ठ है....मैं इसी वक्त तुम्हारी बेटी के साथ शादी रचाऊँगा !'

धनश्रेष्ठ ने तुरन्त आननफानन में शादी का उत्सव रचाया।

सुनन्दा और श्रेणिक शादी के बन्धन में बन्ध गये।

पिन्टू की कथा

पिन्टू के बराबर वाले मकान में जुबेदा बीबी रहती थी, उनका एक लड़का था लड़के का नाम करीम था, एक बार करीम बीमार पड़ गया। बड़े २ डा० हकीम उसे देखने आये लेकिन सभी असफल रहे, इस तरह की "पोजिशन" समय को देखते हुये उनके नम्र दिल को एक बहुत बड़ा आघात पहुंचा और तभी उन्हें भगवान (खुदा) याद आ गया, किसी कवि ने सत्य ही कहा है—

दुःख में सुमरिन सब करे,
सुख में करे ना कोय।
जो सुख में सुमरिन करे,
तो दुःख काये को होय ।।

दुःख के समय जुबेदा बीबी ने भगवान को एक अच्छे ढंग से–मन से याद किया कि हे प्रभु (खुदा) हे भगवान ये बच्चा आपका ही है, इस बच्चे को बचा लो, इसी के साथ २ कहने लगी (प्रार्थना करने लगी) कि यदि लड़का अच्छा हो जायेगा तो आसमान जितनी रोटी चढ़ाऊंगी कुछ ही दिनों बाद लड़का अच्छा हो गया। साथ में लड़का भी सोचने लगा कि मम्मी इतनी बड़ी रोटी कब बनाती है, इसी सोच में एक दिन बीता, दो दिन, तीन दिन बीत गये और एक दिन करीम ने अपनी मां से पूछा कि मम्मी रोटी कब बनाकर चढ़ाओगी, मां ने अपने

बच्चे को जवाब दिया कि खुदा जब इतना बड़ा तवा भेजेगा तब, आज के युग में कैसे २ इन्सान है कि भगवान को ठगने के लिये कैसे-कैसे झूठ का सहारा लेते हैं।

✡

नई पीढ़ी

पीपल के नीचे बिखरे
बुजुर्ग पत्तों को
नई पीढ़ी के नये पत्ते
हँसकर उनकी दुर्दशा पर चिढ़ाने लगे
अपनी तरूणाई पर इठलाने लगे।
एक बुजुर्ग पत्ते ने उन नादान पत्तों को सीख दी,
मेरे नन्हें बालकों !
तुम्हारी भी वही दशा होगी
जो पतझर ने हमारी की है।
परन्तु दुःख तो इस बात का है कि
पत्थर की चोट खाकर भी फल देने वाले
वृक्ष-कुल में जन्म लेकर भी
इतनी छोटी बुद्धि रखते हो ?
अरे नालायकों ?
तुम्हें वृक्ष-कुल में नहीं,
मनुष्य कुल में जन्म लेना था।

卐

(४)

तेजमतूरी का कमाल

सुनन्दा और श्रेणिक के दिन आराम से कटते हैं। सुनंदा स्वयं को भाग्यशाली मानती है। श्रेणिक अपने आपको पुण्यशाली मानता है।

एक दिन की बात है।

क़िस्मत करवट लेने लगी है।

धन सेठ और श्रेणिक दुकान पर बैठे थे। इधर-उधर की गपशप में लगे थे। इतने में बाजार में राजा की ओर से पीटे जा रहे ढिंढोरे के शब्द उन्होंने सुने।

श्रेणिक ने धन सेठ से पूछा : क्या बात है ? यह ढिंढोरा किस बात का है ?'

धन सेठ ने कहा :

'कुमार सवा लाख पोठियों पर तरह तरह का कीमती किराना-माल भरकर देवनंदि' नामका एक बहुत बड़ा व्यापारी आया है। उस देवनंदि के पास एक तोता है। वह तोता छह छह महीने के अंतर से बोलता है। उसे जो भी सवाल पूछो....वह उसका सही जवाब देता है।

एक दिन देवनंदि ने तोते से पूछा :

'ओ तोते ! तेजमतूरी अभी कहाँ पर उपलब्ध होगी ?'
तोते ने कहा : तेजमतुरी फिलहाल बेन्नातट नगर में मिलेगी।'

देवनंदि को तोते की बात पर पूरा भरोसा था। वह सवा लाख पोठ पर माल सामान लादकर यहाँ आया है। कल ही वह राजदरबार में गया था और राजा को कीमती नजराना पेश किया।

राजा ने खुश होकर उससे पूछा—

'कहिए, सौदागर ! हमारे नगर में कैसे आना हुआ ?'

देवनंदि ने कहा : 'महाराज, 'तेजमतूरी' चाहिए। वह लेने के लिए आपके नगर में आया हूं।'

राजा ने अपने मंत्री से पूछा : 'मंत्रीजी, इस सौदागर को तेजमतूरी कहां से प्राप्त होगी ?'

मंत्री को तो कुछ मालूम था नहीं ! उसने कहा—

'महाराज अपने नगर में तो कहीं भी तेजमतूरी मिले ऐसा हमें तो प्रतीत नहीं होता !'

राजा ने उदास होते हुए कहा—

'जहाँ पर सभी चीज वस्तुएँ मिलती हों.... जहाँ पर बड़े-बड़े श्रीमंत व्यापार धंधा करने हेतु आवाजाही करते हों, वही नगर कहलाता है ! जहाँ सब वस्तुएँ उपलब्ध न हों.... जहां बड़े व्यापारी आते जाते न हों....उसे नगर कैसे कहा जा सकता है ? वह तो खेड़ागाँव कहलाता है !'

महामंत्री ने कहा—

'महाराज, निराश होने की जरुरत नहीं है....अपना नगर काफी बड़ा है... हो सकता है किसी के घर में तेजमतूरी मिल भी जाए ! अपन तलाश करवाने के लिए ढिढोरा पिटवा दें।....शायद तेजमतूरी हाथ लग जाए !'

कुमार, राजा की आज्ञा से महामंत्री ने यह ढिढोरा पिटवाया है !'

श्रेणिक ने तुरन्त धन सेठ से कहा—

'आज जरूर आपका पुण्योदय होनेवाला है। गई हुई सारी सम्पत्ति वापस आ मिलेगी। नगर सेठ का पद वापस मिलेगा। सारी इज्जत, शान-शौकत घर ढूंढते हुए स्वयं चली आएगी ! आप एक काम करें....जाकर इस ढिढोरे की चुनौती स्वीकार कर लें !'

सेठ दुकान से खड़े हुए। श्री नवकार मन्त्र का स्मरण किया और वे चौराहे पर आये। जाकर उस ढिढोरे को स्पर्श करके स्वीकार कर लिया। ढिढोरा पीटने वाले आदमियों ने जाकर राजा से निवेदन किया कि 'महाराज' धन सेठ ने ढिढोरा स्वीकार कर लिया है।

'अरे ! वाह ! धन सेठ ने ढिढोरा स्वीकार किया है ? पर उस मुफलिस के पास है क्या ? उसकी सारी सम्पत्ति तो मैंने जप्त कर ली है....उसके पास तो पत्थर भी नहीं होंगे ! होगी तो मिट्टी होगी इसके पास ! लगता है....उसकी सम्पत्ति जाने से या

तो वह होश में नहीं है ! या फिर नींद में से उठकर सोचे समझे बगैर ढिंढोरे को स्वीकार कर लिया लगता है ! ठीक है....पहले उसे मेरे पास बुला लाओ....मैं उसकी तेजमतूरी देखूंगा। बाद में उस परदेशी व्यापारी देवनंदि के साथ परिचय करवाऊंगा !'

राजसेवक धन सेठ की दुकान पर गये।

राजसेवकों को दुकान की ओर आते हुए देखकर धन सेठ ने कुमार से पूछा :

'कुमार, राजसेवक मुझे बुलाने के लिए आ रहे लगते हैं; बोलो....अब क्या किया जाए ?'

कुमार ने अपने पास से एक रत्न निकालकर सेठ को दिया और कहा—इस रत्न को उत्तरीय वस्त्र के छोर से बांध कर आप जाओ....यह राजवशीकरण' रत्न है। रास्ते में इस रत्न का स्मरण करते हुए जाना। इस रत्न के प्रभाव से राजा तुम पर प्रसन्न हो उठगा। और ये अन्य रत्न जो मैं दे रहा हूं....वे राजा को नजराना रख देना। राजा जरूर देवनंदि के साथ व्यापार करने का हक तुम्हें प्रदान करेगा।' श्रेणिककुमार ने दूसरे कीमती रत्नों से भरा थाल सेठ को दिया।

राजसेवक सेठ की दुकान पर आये और सेठ से बोले—

'सेठजी, चलिए....राजसभा में ! राजा आपको याद कर रहे हैं !'

सेठ तुरन्त खड़े हुए और थाल लेकर राजसेवकों के साथ चल दिये।

राजसभा में जाकर सेठ ने राजा को प्रणाम किया। और रत्नों से भरा हुआ थाल राजा को भेंट किया। 'राजवशीकरण' रत्न के प्रभाव से सेठ को देखते ही राजा प्रसन्न हो उठा। राजा यह पूछना भी भूल गया कि 'सेठ, तुम ये रत्न लाये कहां से ? मैंने तो तुम्हारी सारी सम्पत्ति जप्त कर ली थी !'

राजा ने महामंत्री को आज्ञा की—

'महामंत्री, देवनंदि को जो भी व्यापार करना हो....वह धन सेठ के साथ ही करे। और कोई व्यापारी यदि ज्यादा धन दे भी सही....तब भी व्यापार करने का हक धन सेठ के पास ही रखना।'

फिर राजा ने धन सेठ से कहा—

'सेठ, तुम इस परदेशी व्यापारी देवनंदि को जो भी माल चाहिए वह दिलाना।'

धन सेठ ने कहा—

महाराज, इस व्यापारी से पूछिए....इन्हें जो तेजमतूरी चाहिए वह नई चाहिए या पुरानी ही चाहिए ?' राजा तो धन सेठ की बात सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। 'इस धन सेठ ने तो मेरे राज्य की शान रखी।' राजा ने धन सेठ से कहा :

'धन सेठ, तुम्हें तुम्हारा नगर सेठ का पद मैं वापस करता हूँ।' यों कहकर सेठ के सिर पर सुन्दर पगड़ी बधवाई और कीमती वस्त्र भेंट किये।

देवनंदि को साथ लेकर धन सेठ अपनी दुकान पर आये। देवनन्दि बड़ा ही चतुर व्यापारी था। उसने धन सेठ के सामने देखा और सुवर्ण का बिजौरा निकाल कर सेठ के सामने भेंट कर दिया। धन सेठ ने कहा—

'महानुभाव, यह भेंट इस कुमार के सामने रखो····मेरा सारा कारोबार ये ही देखते हैं। तेजमतूरी के जानकार भी ये ही हैं!

देवनन्दि ने दूसरा सुवर्ण बिजोरा निकाल कर कुमार को भेंट किया। देवनन्दि सोचता है: 'सचमुच' धन सेठ कितने विनम्र और विवेकी हैं! साथ ही चतुर भी हैं। अपने से छोटे आदमी की भी कद्र करते हैं! जिस नगर में ऐसे श्रेष्ठि रहते हों वह नगर और देश धन्य बनता है!'

देवनन्दि ने श्रेणिककुमार की ओर देखा....गौर से देखा.... उसे श्रेणिक का चेहरा कुछ परिचित सा दिखाई दिया। उसने कुछ याद किया और वह बोला:

'कुमार, मैंने तुम्हें कहीं देखा है....शायद राजगृही में देखा है।'

कुमार यह सुनकर चौंक पड़ा। उसने चालाकी से जवाब दिया....

'अरे बड़े सेठ! 'राजगृह' यानी राजा का घर! घर यानी बन्धन! मैं तो चाहता हूँ कि राजा का बन्धन मेरे दुश्मन को भी

नहीं हो ! पर मेरे सेठ....यदि तुम्हें ऐसी बातें ही करनी हो तो और किसी दुकान पर जाइये....वहाँ से जो माल चाहिए ले लीजिए....। मैं भला क्यों राजा के बन्धन में होऊँगा ?'

बेचारा देवनन्दि घबरा गया। वह श्रेणिक के पैरों में गिर गया। उसने कहा—

मुझे माफ कर दीजिए....ऐसे शब्द मुझे नहीं बोलने चाहिए थे ! फिर भी मुँह से निकल गये....मैं क्षमा मांगता हूं।'

श्रेणिक ने हँसकर कहा—

'सेठ, बुरा मत मानना....यह तो दो पल मजाक कर लिया ! चलिए....अब मैं आपको तेजमतूरी बताता हूँ। पहले तेजमतूरी में से सोना बनाने की रीत समझाता हूँ—

पहले एक गद्रियाणा तेजमतूरी को आग में डालने का। उसमें बीस तोला ताम्बा डालने का....तेजमतूरी के संयोजन से ताम्बा सोने में बदल जाएगा।'

देवनन्दि ने कहा—'मुझे तेजमतूरी दिखाइये।'

धन सेठ ने तेजमतूरी का नमूना दिखाया।

देवनन्दि सोचता है—

कितना किस्मतवाला है यह सेठ ! इसके घर में तेजमतूरी के बोरे भरे पड़े हैं, फिर भी इसमें नम्रता....विवेक....कितने सारे गुण हैं ! उसने धन सेठ से कहा : 'मैं मेरी सवा लाख पोठें यहाँ ले आता हूँ !'

देवनन्दि की पोठें आ गई। पोठों में रत्न थे.. सोना था.... चाँदी थी....वस्त्र थे....चन्दन....कपूर और कस्तूरी थी। कीमती किराना भरा हुआ था। धन सेठ और श्रेणिक ने देवनन्दि के साथ वस्तुओं की अदला-बदली की। व्यापार किया। बड़ा व्यापार हुआ। देवनन्दि ने काफी तेजमतूरी खरीदी। धन सेठ ने देवनन्दि की हजारों पोठें खरीद ली।

धन सेठ ने देवनन्दि से कहा—

'आप हमारे मेहमान हो, आपको हमारे साथ ही भोजन करना है....इससे पहले अपन देव पूजा कर आएँ।'

धन सेठ, श्रेणिक और देवनन्दि स्नान करके पूजन के स्वच्छ वस्त्र पहनकर मन्दिरजी में पूजा करने के लिए गये। जिन-मन्दिर के निकट के बगीचे में से जूही के सुन्दर खुशबूदार फूल ले आये और उन्होंने श्री जिनेश्वर भगवान की पूजा की। बाद में गीत गान और नृत्य के द्वारा भाव पूजा की।

तीनों घर पर आये। भोजन किया। परस्पर बातचीत की। आराम किया।

देवनन्दि ने कहा—

'अब हमें महाराज के पास चलना चाहिए।'

सुन्दर वस्त्र धारण किये और धन सेठ व देवनन्दि राज-सभा में गये। राजा को प्रणाम करके देवनन्दि बोला : 'महाराजा, आप धन्य हैं....आप पुण्यशाली हैं....कि ऐसे धन सेठ जैसे बड़े और

गुणी व्यापारी आपके नगर में रहते हैं। वे जैन धर्म का सुन्दर पालन करते हैं। मुझे तो इन धन सेठ से सात धातु: मौ निधान और चौदह रत्न प्राप्त हुए हैं। महाराज, मैं आपसे विनम्र विनती करता हूं कि इस धन श्रेष्ठि को आप औरों की तरह सामान्य व्यापारी मत समझना। मैं कई नगरों में घूमा हूँ.... घूमता हूँ.... पर ऐसा व्यापारी मैंने कहीं पर नहीं देखा है!'

राजा देवनन्दि की बातें सुनकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ। राजा ने देवनन्दि का कीमती वस्त्र व अलंकार देकर स्वागत किया।

बेन्नातट नगर में धन श्रेष्ठि और देवनन्दि श्रेष्ठि की प्रशंसा होने लगी। लोग कहने लगे —

जब से धन श्रेष्ठि के घर पर परदेशी कुमार आया है.... तब से धन श्रेष्ठि की दिन ब दिन उन्नति हो रही है। धन श्रेष्ठि की पुत्री सुनन्दा भी कितनी भाग्यशाली है! कितना रूपवान, गुणवान और पुण्यशाली पति उसे मिला है!'

धन श्रेष्ठि के साथ देवनन्दि घर पर आया। श्रेणिककुमार ने स्वागत किया। तीनों हवेली के मुख्य खण्ड में एकत्र हुए।

देवनन्दि ने कहा —

'महानुभाव! अब मैं यहाँ से प्रयाण करूँगा। आपने मेरा बहुत ध्यान रखा है....मुझे काफी कमाई करवाई है.... मुझे जो वस्तु चाहिए थी वह मुझे दी है....मैं आप दोनों को कभी भी नहीं भुला सकता! आप भी मुझे भुला मत देना!'

देवनन्दि की आँखों में आंसू आ गये। श्रेणिक ने कहा—

'श्रेष्ठिवर्य, हम तुम्हें कैसे भुला सकेंगे ? तुम इस नगर में आये तो धन सेठ की किस्मत भी पलटी। तुम्हारे कारण ही उन्हें उनका नगर सेठ पद वापस मिला है। ढर सारी सम्पत्ति उन्हें प्राप्त हुई है।'

धन सेठ बोले –

महानुभाव, जो कुछ भी अच्छा हुआ है....वह इन कुमार के आने स ही हुआ है....अपना जो रिश्ता कायम हुआ है....वह हमेशा बढ़ता ही जाएगा। जब तब सन्देश भिजवाते रहेंगे और पत्र भी लिखते रहेंगे। आप खुशी के साथ पधारिये।'

श्रेणिक ने कहा

'श्रेष्ठिवर्य, आपका मार्ग निर्विघ्न हो आपका कल्याण हो....आपके मनोरथ पूर्ण हो....कभी मौका आये तो हमें अवश्य याद करना।'

देवनन्दि ने बेन्नातट नगर से प्रयाण किया।

श्रेणिक ने धन श्रेष्ठि स कहा—

'अब हमें अपनी नई संगमरमर की हवेली बनवानी चाहिए। बेन्नातट नगर में किसी की भी न हो वैसी अद्भुत और आलीशान हवेली का निर्माण करवाना चाहिए। बाहर से कुशल कारीगरों को शिल्पियों को बुलाकर काम चालू करवा दें!'

धन सठ ने हां कही। हवेली का कार्य जोरशोर से प्रारम्भ हो गया।

इधर धन सेठ रोजाना राजसभा में जाने लगे। राजा का प्रेम भी बढ़ता गया।

श्रणिक ने सदाव्रत चालू कर दिया। रोजाना सैकड़ों श्रादमी लोग सदाव्रत में खाना खाने लगे। धन सेठ का जयजयकार होने लगा।

जो श्रीमन्त लोग पहले धन सेठ की बुराई करते थे.... मजाक उड़ाते थे....अब वे आ आ कर धन सेठ की चापलूसी करने लगे। धन सेठ से मिलने के लिए घर-दुकान के चक्कर काटने लगे!

धन सेठ की हवेली में अब नृत्यकार श्राते हैं, नाचगानों की महफिल जमती है। संगीतकार श्राते हैं...संगीत के सुरों का शामियाना तनता है....हास्य-विनोद करने वाले आते हैं....श्रौर हँसी–मजाक की फुलझड़ियां बिखरती हैं।

धन सेठ के घर पर श्राया हुआ कोई न तो भूखा वापस लौटता है....न ही प्यासा वापस जाता है! कोई निराश नहीं होता! जिसे जो चाहिए वह मिलता है!

चारों श्रोर–गाँव–गाँव श्रौर नगर–नगर में धन सेठ का नाम गूंजने लगा। साथ ही साथ श्रेणिककुमार श्रौर सुनन्दा के गुण भी गाये जाने लगे।

—क्रमशः

—*—

प्रार्थना

हे वीतराग ! मैं अशक्त हूं,
घर-परिवार का परित्याग करके आपकी तरह विशुद्ध संयमी
जीवन, व्यतीत करने की मुझ में
शक्ति नहीं है—
अशक्त हूं मैं हे वीतराग !
भूख-प्यास सहकर आपकी तरह उग्र तपस्या करने की सामर्थ्य
नहीं है मुझ में,
हे विभो ! अशक्त हूँ मैं,
तन एवं मन को स्थिर करके आपकी तरह एकाकी मैं,
आत्म-ध्यान करने के लिए समर्थ नहीं हूँ।
अपनी कितनी निर्बलताओं को मैं गिनाऊँ आपको हे मेरे भगवन् ?
मैं निर्बलताओं का अनन्त योग हूँ।
फिर भी हे परम पूजनीय !
मैं आपके पास शक्ति नहीं मांगता, मांगता हूँ केवल इतना ही,
भोग में होऊँ अथवा रोग में,
सुख में होऊँ अथवा दुःख में,
भीड़ में होऊँ अथवा एकान्त में,
घर में होऊँ अथवा व्यवसाय में, काम में होऊँ अथवा विश्राम में,
सर्वत्र एवं सदैव केवल आपका ही स्मरण रहे,
आँखों में और अन्तर में केवल आपकी ही छवि प्रतिपल रहे,
इतना ही आप मुझे प्रदान करें,
तो मुझे अन्य कुछ भी नहीं चाहिये प्रभु !

(५)

सुनन्दा को दोहद

इधर श्रेणिक व सुनन्दा के बीच प्रीति बढ़ती जा रही थी। सुनन्दा पति की इच्छानुसार ही चलती। पति को वह देवता मानती। ऐसे पति को पाकर वह अपने आपको सौभाग्यशालिनी समझती थी। इस प्रकार आनन्द-प्रमोद में दो साल बीत गये थे। सुनन्दा गर्भवती बनी थी। जैसे-जैसे गर्भ बढ़ने लगा, सुनन्दा की भूख कम होने लगी। कभी-कभी तो दो-चार कौर खाते ही वमन हो जाता। शरीर कमजोर हो गया था। थोड़ी चलने पर साँस फूलने लगती। एक बार पिता के चरणों में गिरकर कहने लगी—"पिताजी! अब मैं इतनी अस्वस्थ हो गयी हूँ कि लगता है जीऊँगी या मरूँगी। मुझे बार-बार प्यास लगती है। पानी पीते रहने पर भी प्यास ही नहीं बुझती।"

श्रेणिक को भी सुनन्दा की ऐसी हालत पर चिन्ता होने लगी। अपनी सासु से कहा—"आपकी पुत्री दिन-ब-दिन दुर्बल क्यों होती जा रही है? क्या उसे कोई दोहद उत्पन्न हुआ है? कहते हैं कि दोहद की पूर्ति न होने पर कभी-कभी स्त्री की मृत्यु भी हो जाती है!"

माता ने पुत्री से पूछा। पुत्री ने कहा—"हे माता! मुझे ऐसा दोहद उत्पन्न हुआ है, जिसकी पूर्ति सम्भव नहीं, अतः मेरी मृत्यु अवश्यम्भावी है।"

पिता ने कहा—"हे पुत्री! तुझे जो दोहद उत्पन्न हुआ है, वह कहना ही चाहिए। माता से न कहेगी, तो किससे कहेगी?" सुनन्दा ने अपना दोहद बताते हुए कहा—

"मुझे ऐसी इच्छा होती है कि मैं हाथी पर बैठकर दोनों हाथों से उदारता पूर्वक दान देते हुए जिनमन्दिर में जाऊँ। परमात्मा की अष्ट-द्रव्यों से द्रव्यपूजा करूँ, बाद में नृत्य-गीत आदि से भावपूजा करूँ। मेरे आगे राजा के विविध वाजित्र बजते हों, कलाकार नृत्य करते हों, मैं मस्तक पर छत्र धारण करूँ। मैं सदा पंचपरमेष्ठि को याद करती रहूं. इच्छित दान दूँ, सार्धमिकों को भोजन कराऊँ, उन्हें वस्त्र आदि देकर उनकी भक्ति करूं, पूरे देश में अमारि पडह बजाकर जीवों को अभयदान दिलाऊँ। तभी मेरा दोहद पूर्ण होगा।"

माता ने पुत्री का दोहद जानकर जँवाई से कहा। श्रेणिक अत्यन्त हर्षित होकर सोचने लगा—"लगता है कोई उत्तम जीव सुनन्दा की कुक्षी में आया है। शास्त्रों में भी बताया है कि ऐसे महान दोहद उसी स्त्री को आते हैं, जिसकी कुक्षी में कोई महापुरुष आया हो और वह दोहद पूर्ण हो जाय, तो सोने में सुगन्ध समान है।"

श्रेणिक भी सुनन्दा के दोहद को पूर्ण करने का उपाय सोचने लगा।

❋

[क्रमशः]

(६)

अभयकुमार का जन्म

विचार करते-करते उसे एक बात का स्मरण आ गया। वह तुरन्त अपने श्वसुर सेठ धनपति के पास गया और उनसे पूछा—"आपके राजा की जो पुत्री जन्मान्ध थी, वह अभी जीवित है या मर गयी ?

धनपति ने कहा—"नहीं वह अभी जीवित है। परन्तु उसके नेत्र किसी प्रकार भी ठीक नहीं हो सके। वह बाल्यावस्था से ही दीक्षा लेना चाहती थी, उसके विशाल नेत्र देखकर कोई भी यह नहीं समझ सकता कि वह अन्धी है, बल्कि लोग उसे सुलोचना कहते हैं। राजा उसे बहुत ही प्रेम करते हैं और यदि कोई उसे अन्धी कहता है तो वे उसे दण्ड दिये बिना नहीं रहते।

श्रेणिककुमार ने कहा—'तब तो यह बहुत अच्छी बात है। आप उसकी अन्धता से लाभ उठाकर अपनी पुत्री का दोहद पूर्ण कर सकते हैं।

धन पति ने पूछा—'यह किस प्रकार हो सकता है ?"

श्रेणिककुमार ने एक रत्न धनपति के हाथ में रखते हुए कहा—"इसे लेकर आप राजा के पास जाइये और उनसे कहिये कि मैं आपकी पुत्री के नेत्र अच्छे कर सकता हूं। इसके बाद इस रत्न को पानी में डुबो कर वही पानी राज-कन्या के नेत्रों में डालने

से उसकी अन्धता दूर हो जायगी। इससे राजा सन्तुष्ट होकर आपसे इच्छित वस्तु मांगने को कहेंगे। उस समय आप उनसे अपनी पुत्री के दोहद का हाल निवेदन कर उनसे उसकी पूर्ति के लिये प्रार्थना कीजियेगा। मुझे आशा है कि उस अवस्था में कदापि इंकार न करेंगे।"

श्रेणिककुमार की इस सूचनानुसार धनपति रत्न लेकर राजा के पास गया और वहां राज-कन्या के नेत्रों की चिकित्सा की। उस रत्न के प्रभाव से राज-कन्या के नेत्रों की ज्योति इतनी बढ़ गयी कि उसे दिन में तारे दिखायी देने लगे। राजा को इससे बहुत ही आनन्द हुआ। उसने धनपति को अपना आधा राज्य दे देने की इच्छा प्रगट की। यह सुनकर धनपति ने कहा—"हे राजन! आपका राज्य लेकर मैं क्या करूंगा? मुझे राजा बनने की अपेक्षा आपकी प्रजा बनकर रहने में ही अधिक प्रसन्नता है और मुझे कुछ देना चाहते हैं तो आप कृपया मेरी पुत्री का दोहद ही पूर्ण करने में सहायता दीजिये। मेरे लिये वही सेवा का उचित पुरस्कार होगा।

राजा ने कहा—हे सेठजी! आपके उपकार का बदला तो किसी प्रकार दिया ही नहीं जा सकता। फिर भी आप जो कहें, वह करने को मैं तैयार हूँ। कहिए, आपकी पुत्री का दोहद पूर्ण करने में किस प्रकार सहायता दे सकता हूं।

धनपति ने यह सुनकर अपनी पुत्री के दोहद का हाल राजा को कह सुनाया। राजा ने तुरन्त उसकी प्रार्थना स्वीकार करली।

शीघ्र ही इसके लिये तैयारी की गयी। एक दिन सुबह के वक्त एक जुलूस सा सजाया गया। एक हाथी पर राजा ने और दूसरे पर राज-कन्या के साथ सुनन्दा ने स्थान ग्रहण किया। उनके सिर पर छत्र और चमर आदि राजसी चिह्न शोभा दे रहे थे। जुलूस के आगे-आगे नाच होता जा रहा था। तरह-तरह के बाजों की मधुर ध्वनि लोगों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करती थी। इस प्रकार बड़ी सज-धज और ठाठ-बाट के साथ जुलूस निकला।

नगर में जितने जिन-मन्दिर थे, उन सबों में सुनन्दा ने जा-जा कर भक्तिपूवक देव-पूजा की। वहाँ से घर लौटने पर उसने साधुओं को सुस्वादु आहार दिया और समस्त देश में ढिंढोरा पिटवा कर लोगों को अभयदान दिलवाया। राजा ने भी अन्नादि अनेक पदार्थ अपनी ओर से उपहार में बाँटे। इस अवसर पर समूचा नगर ध्वजा-पताकाओं से सजाया गया और नगर-निवासियों ने भी उत्सव मनाकर आनन्द प्रकट किया।

यथा समय सुनन्दा ने एक रूपवान पुत्र को जन्म दिया। गर्भावस्था में सुनन्दा को अभय दान विषयक दोहद उत्पन्न हुआ था, इसलिये श्रेणिककुमार ने अपने इस पुत्र का नाम अभयकुमार रक्खा।

एक ही साधे सब सधै

वह साधु तो नहीं था पर उसका सारा व्यवहार साधु जैसा था। नगर के बाहर झोपड़ी में रहकर वह सादा जीवन बिता रहा था लोग उससे बहुत आकर्षित थे। वे आते थे तथा उसकी लाख रुपयों की बातों को ध्यान से सुनते थे।

एक दिन सवेरे-सवेरे एक आदमी आया तो बोला "आज तो चार पांच दिन में आये, तबीयत तो अच्छी है न ?" तो आगंतुक बोला "पानी की कमी है, बगीचा सूख रहा है, अतः कुंवा खोद रहा था ?" पूछा 'क्या पानी निकला ?" तो बोला "नहीं। पहले दिन उत्तर में पांच फिट गड्ढा खोदा, पानी नहीं निकला तो दूसरे दिन दक्षिण में खोदा पांच फीट, फिर भी पानी नहीं आया। चारों दिशा में सफलता न मिली।"

देखो तुम्हें एक बात सुनाता हूं। एक आदमी ने विद्वान का भाषण सुना तो पढ़ने लिखने की ठानी कि मैं भी विद्वान बनूं पर पांच दिन में ही घबरा गया। फिर संगीतज्ञ बनने का सोचा और पांच दिन बाद वह भी छोड़ दिया। इसीप्रकार चार-पांच अलग-अलग बातें सोचकर वह अलग-अलग विद्या सीखना चाहा। "तो वह आगंतुक बोला-ऐसे कैसे सीखता पांच पांच दिन में घबड़ाकर छोड़ने से।

"वे बोले बस तुम्हारा कहना ठीक है, पर तुमने इस पर अमल नहीं किया।" यदि एक ही जगह आत्मविश्वास के साथ बीस-पच्चीस फीट खोदते चले जाते तो सफलता तुम्हारे पास होती। जाओ पुरुषार्थ करो। 'एक ही साधे सब सधै, सब साधे सब जात।'

(७)

राज्य प्राप्ति

पाठकों को शायद स्मरण होगा कि देवनन्दी ने श्रेणिककुमार को पहिचान लिया था, परन्तु यह बात प्रकट करते ही श्रेणिककुमार ने ऐसी डाँट दिखायी, कि वह मौन हो गया। ऐसा करने का कारण यह था, कि श्रेणिककुमार बेन्नातट में अपना असली परिचय प्रकट करना न चाहता था। देवनन्दी भी यह बात समझ गया, इसलिये उसने भी फिर किसी से इसका जिक्र करना उचित न समझा।

कुछ दिनों के बाद देवनन्दी व्यापार के लिये भ्रमण करता हुआ राजगृही में जा पहुंचा। वहाँ अब भी राजा प्रसेनजित राज करते थे। परन्तु वे अब पहले की भाँति सुखी न थे। उनके समस्त पुत्र आपस में लड़ाई-झगड़ा करते थे। इससे उनका जी बहुत ही दुःखी रहता था। उन्हें अब श्रेणिककुमार की बड़ी याद आती थी, क्योंकि वे जानते थे कि वह सब लड़कों की अपेक्षा अधिक सुशील और योग्य था।

राजा प्रसेनजित एक दिन उसका स्मरण कर अपनी रानी से कहने लगे—हे प्यारी ! मैंने श्रेणिककुमार का अपमान किया, इसीलिये हव राज्य छोड़कर कहीं चला गया। अब वह न जाने

कहाँ होगा और क्या करता होगा? मुझे अब इसी चिन्ता के कारण रात को नींद भी नहीं आती। जब से वह गया तब से मानों मेरा सुख ही चला गया। मैंने बिना विचारे यह कार्य किया इसलिये आज मुझे पश्चाताप करना पड़ रहा है। ऐसा न हो कि वह कहीं नौकरी कर अपना जीवन निर्वाह कर रहा हो। अहो? एक राजकुमार होकर भी उसे वर्षा में भीगना पड़ता होगा, गर्मी के दिनों में धूप सहनी पड़ती होगी और शीतकाल में शीत का सामना करना पड़ता होगा। हाय! मैं अब क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और उसका किस प्रकार पता लगाऊँ।"

राजा के हृदय में प्रायः नित्य ही ऐसे विचार उठा करते थे परन्तु कोई उपाय न होने के कारण अन्त में उन्होंने इसे निरर्थक मोह समझ कर सन्तोष माना।

वे अपने मन में कहने लगे कि इस संसार में कौन किसका पुत्र और कौन किसकी स्त्री? यह सब स्वप्न का सा जाल है। संसार में अनन्त जीव हैं। वे सब न जाने कितनी बार एक दूसरे के आत्मीय बन चुके हैं बनते हैं और बनेंगे। इसीलिये ऐसी आत्मीयता को लेकर शोक करना व्यर्थ है।

सयोगवश जिन दिनों राजा प्रसेनजित ऐसी चिन्ता में पड़े हुए थे, उन्हीं दिनों राजगृही में देवनन्दी का आगमन हुआ। वह यथा नियम भेंट देने के लिये राजा की सेवा में उपस्थित हुआ। उस समय वहाँ राजा के ९९ पुत्र ही मौजूद थे। देवनन्दी ने यह देखकर

पूछा—"हे राजन् ! आपके तो एक सौ पुत्र थे, इस समय निन्यानवे ही क्यों दिखाई देते हैं ?

देवनन्दी के इसी प्रश्न का उत्तर देते हुए राजा प्रसेनजित से सब वृत्तान्त सुनकर देवनन्दी को विश्वास हो गया, कि उसने धनपति के यहाँ जिस युवक को देखा था, वह अवश्य ही श्रेणिक-कुमार था। उसने राजा से कहा—हे राजन् ! मैंने बेन्नातट नगर में धनपति नामक एक वणिक के यहाँ एक युवक को देखा है। मेरी धारणा है कि वह श्रेणिककुमार ही है। उसने अपने बुद्धि बल से अपरिमित धन उपार्जन किया है। धनपति ने उसे अपना घर जमाई बना लिया है और अब वह वहीं आराम से रहता है।

देवनंदी के यह वचन सुनकर राजा प्रसेनजित का मुरझाया हुआ जख्म फिर हरा हो उठा। मन में तो उसे बड़ा ही आनन्द हुआ, पर बाहर से उसने उपेक्षा का भाव दिखलाते हुए कहा—मुझे मालूम होता है कि आप कुछ धोखा खागये हैं कि जिसे आपने देखा है, वह श्रेणिककुमार नहीं हो सकता। वह तो परम आलसी, अधम और मूर्ख था। अतः अवश्य ही भटक-भटक कर मर गया होगा। इस प्रकार जो स्वेच्छा से गृह त्याग करता है, उसकी दुर्दशा ही होती है। मनुष्य का कर्म प्रकट होकर उसे कोई दुःख नही देता, बल्कि वह मनुष्य को ऐसी बुद्धि देता है, जिससे वह दुःखी होकर दर-दर भटकता फिरता है। श्रेणिक किसी प्रकार धनोपार्जन कर ही नहीं सकता मेरी धारणा है कि या तो आप असत्य भाषण करते हैं। या आपने पहचानने में ही भूल की है।"

देवनन्दी ने कहा—"हे राजन् ! आपका कहना यथार्थ है। नि सन्देह मनुष्य अपने कर्म से ही सुख दुःख का अधिकारी होता है। परन्तु मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैं झूठ नहीं बोलता। मैं शपथ-पूर्वक कहता हूँ कि मैंने आपसे जो कुछ कहा है, वह बिलकुल ठीक है। परन्तु इस पर विश्वास करना या न करना आपके अधिकार की बात है।

राजा ने कहा—अच्छा मैं इस विषय में जाँच करूँगा।

इस प्रकार देवनन्दी और उनकी बातचीत का अंत आया। देवनन्दी द्वारा श्रेणिककुमार का यह अनुसंधान पाकर राजा प्रसेनजित मन में तो बहुत ही आनन्दित हुए परन्तु बाहर से किसी के निकट भी उन्होंने अपना मनोभाव प्रकट न किया। देवनन्दी को विदा करने के बाद उन्होंने शीघ्र ही किसी सेवक को बेन्नातट भेज कर चुपचाप उसका पता लगाना स्थिर किया।

दूसरे ही दिन राजा ने अपने एक बुद्धिमान सेवक को सब मामला समझाकर बेन्नातट के लिये रवाना किया। राजा ने उसे एक पत्र दिया था, जिसमें सांकेतिक भाषा में ऐसी बातें लिखी थीं, जिन्हें केवल श्रेणिककुमार ही समझ सकता था। राजा का सेवक वह पत्र लेकर यथा समय बेन्नातट नगर में पहुंचा और वहाँ धनपति के मकान को खोजकर वह पत्र श्रेणिककुमार को पहुंचाया। श्रेणिककुमार वहाँ मिला। श्रेणिककुमार ने बड़ी उत्कण्ठा के साथ उस पत्र को खोलकर उसे पढ़ना आरम्भ किया। उसमें निम्नलिखित बातें लिखी थीं—

श्रीमान् हमें एक ऐसे मनुष्य का पता चाहिए जिसने बन्द टोकरी का पकवान खुद भी खाया था और अपने भाईयों को भी खिलाया था। उसने बन्द घड़े से खुद भी पानी पिया था और अपने भाईयों को भी पिलाया था। इसके अतिरिक्त एक बार उसने कुत्तों की पंक्ति में भी बैठकर भोजन किया था। इस समय उसके माता-पिता उसके कारण दुःखी हो रहे हैं इसलिए हम उसका पता चाहते हैं। हम जानना चाहते हैं कि अपने माता-पिता का जी दुखाकर वह दूर देशान्तर में किस प्रकार रह सकता है ?

साथ ही हम यह भी जानना चाहते हैं कि श्वान कहने पर जिसे क्रोध आ गया था, वह अब दूसरे का घर जमाई होकर किस प्रकार रहता है। इन दोनों में आप किस कार्य को अच्छा समझते हैं ?

—प्रसेनजित

पिता का यह पत्र पढ़कर श्रेणिककुमार के नेत्रों से अश्रु-धारा बह निकली। वह अपने मन में कहने लगा—"पिताजी को मैं अब क्या उत्तर दूँ ? सच बात तो यह है कि जो शक्तिहीन पुत्र होते हैं, जिनमें कुछ करने का सामर्थ्य नहीं होता, वही माता-पिता की मार पीट सहन करते हैं। परन्तु जो मेरे जैसे होते हैं, वे जरासी बात भी सहन नहीं कर सकते और तुरन्त घर से बाहर निकल पड़ते हैं। यद्यपि यह भी ठीक है कि जो माता-पिता और गुरुजनों की हित शिक्षा पर ध्यान नहीं देते वे दर-दर भटकते फिरते हैं, किन्तु पुरुषार्थी मनुष्य इसकी चिन्ता नहीं करता। वह सदा आत्म सम्मान चाहता है। उसी के लिये वह जीता है और उसी के पीछे

भर मिटता है। खैर जो कुछ हो चुका है, वह तो अब मिट सकता ही नहीं, पर पिताजी ने इतने दिनों के बाद मुझे स्मरण किया है इसलिये अब मुझे उनके पत्र का उत्तर लिख भेजना भी आवश्यक है।" इस प्रकार विचार कर श्रेणिककुमार ने भी उस पत्र का उत्तर लिखकर उसी सेवक द्वारा अपने पिता के पास भेज दिया। उस पत्र का आशय इस प्रकार था—

"हे राजन्! आपने जिस मनुष्य का पता पूछा है, वह यहीं है और वही आपके पत्र का उत्तर लिख रहा है। आपने राजकुमारों के सामने उसे जो कटु वचन कहे थे, वह उसके लिये असह्य हो गये और इसीलिये उसे आपकी छत्र-छाया का त्याग कर दूर देशान्तर में आश्रय ग्रहण करना पड़ा। जिस समय प्रसाद और प्रशंसा मिलनी चाहिये, उस समय प्रसाद और प्रशंसा का मिलना तो दूर रहा, यदि उलटा उलाहना मिलता हो तो वहां निर्वाह कैसे किया जाय! किसी के यहां घर जमाई होकर रहना कोई भी पसन्द नहीं करता, परन्तु जब स्वयं पिता ही अपने पुत्र को अपमानित करे, तब वह दर-दर भटकता न फिरे तो क्या करे?

—श्रेणिककमार

पुत्र का पत्र पढ़कर राजा प्रसेनजित को आनन्द भी हुआ और दुःख भी। आनन्द इसलिये हुआ कि बरसों के बाद प्यारे पुत्र का अनुसन्धान मिला था और दुःख इसलिये हुआ कि उसने मर्मस्पर्शी बातें लिख भेजी थीं। खैर उन्होंने दूसरे दिन सोच-विचार कर फिर एक पत्र लिखा, वह पत्र इसप्रकार था—

''प्यारे पुत्र !

शुभाशीष ! तुम्हारा पत्र मिला। मैंने तुम्हें जो कटुवचन कहे थे, उनका उद्देश्य तुमको अपमानित करना या तुम्हें नीचा दिखाना न था। मैं तो तुम्हारी परीक्षा लेता था और साथ ही तुम्हारे भाइयों को यह दिखाना चाहता था कि मैं उन्हीं को अधिक चाहता हूं तुम्हें नहीं। यह बात तुम्हारी समझ में न आ सकी, इसीलिये यह अनर्थ हो गया। मुझे इसके लिये बड़ा ही दुःख है। हे पुत्र ? जिसप्रकार पंखहीन मयूर शोभा नहीं देता, उसी प्रकार तुम्हारे बिना राजगृही शोभा हीन हो रही है।

—प्रसेनजित

श्रेणिककुमार ने इस पत्र का उत्तर इसप्रकार लिख भेजा

''पूज्य पिताजी !

चरण स्पर्श ! आपका कृपा पत्र मिला। जिसप्रकार एक पंख गिर जाने से मयूर की शोभा में कोई अन्तर नहीं पड़ता, उसी प्रकार केवल मेरे बिना राजगृही शोभा हीन नहीं हो सकती। राजगृही की शोभा बढ़ाने के लिये मेरे ६६ भाई मौजूद हैं।

—श्रेणिककुमार

पुत्र का यह पत्र पढ़कर राजा प्रसेनजित ने उसे पुनः एक पत्र लिखा। वह इसप्रकार था—

''प्यारे पुत्र !

शुभाशीष ! पत्र मिला। एक नौका उसी समय तक जल में तैरती है, जब तक उसक सब तख्ते यथा स्थान लगे रहते हैं।

यदि उसमें से एक भी तख्ता निकल जाता है, तो वह डूबे बिना नहीं रहती। ठीक यही अवस्था मेरी भी है। तुम्हारे बिना मेरा जीवन भार रूप हो रहा है। कल्पवृक्ष का पत्र हवा से उड़कर जहां भी जाता है, वहां वह शीतल ही बना रहता है। तुम भी उसी तरह सर्वत्र सुखी रह सकते हो, परन्तु मेरा जीवन तो भार रूप हो रहा है। मेरे हृदय का हाल तो वही समझ सकता है, जिस पर ऐसी बीती हो, जो स्वयं भुक्त भोगी हो। अधिक क्या लिखूँ !

[क्रमशः] —प्रसेनजित

मोक्ष प्राप्ति

श्रद्धा-हीन को ज्ञान नहीं होता, ज्ञान-हीन को आचरण नहीं होता, आचरण हीन को मोक्ष नहीं मिलता और मोक्ष प्राप्त किये बिना निर्वाण अर्थात् पूर्ण शांति नहीं मिलती।

आचरण-हीन मानव को ढेरों शास्त्रों का ज्ञान भी कुछ लाभ नहीं पहुंचा सकता। क्या लाखों करोड़ों जलते हुए दीपक अन्धे के देखने में सहायक हो सकते हैं ?

जब मन, वचन और शरीर के योगों का निरोधकर आत्मा शैलेशी अवस्था को पाती है—पूर्णतः स्पन्दन रहित हो जाती है, तब कर्मों का क्षय कर सर्वथा मलरहित होकर सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त होती है।"

(८)

राजगृही का राजा श्रेणिक

पिता का यह पत्र पढ़कर श्रेणिक कुमार का हृदय द्रवित हो उठा।

तदनन्तर पिता और पुत्र में बराबर पत्र व्यवहार होता रहा और उन दोनों का सम्बन्ध बहुत ही मधुर हो गया। कुछ दिनों के बाद श्रेणिककुमार ने अपने भाई तथा पिता के लिये सौ उत्तम घोड़े और अनेक वस्त्राभूषण एवं बहिन और माताओं के लिये रत्नादिक खरीद कर उन्हें अपनी ओर से भेंट स्वरूप भेजे। इस भेंट को पाकर राज-परिवार के सभी मनुष्य प्रसन्न हो उठे और श्रेणिककुमार की प्रशंसा करने लगे। तदनन्तर प्रसेनजित ने श्रणिककुमार का प्रिय वाद्य मन्त्र 'भम्भा' भेजते हुए एक पत्र लिखा—वह इस प्रकार था—"प्यारे पुत्र !

तुम्हारी भेजी हुई समस्त वस्तुएँ मिल गयीं। अब मैं तुम्हारा यह प्रिय वाद्य यन्त्र तुम्हारे पास भेजता हूं। आशा है कि इसमें तुम्हें अवश्य ही प्रसन्नता होगी। हम सब लोग तुम्हें देखने के लिये बहुत ही उत्सुक हो रहे हैं। तुम्हें अब यहाँ चले आना चाहिये। यह जानकर मुझे अतीव प्रसन्नता हुई कि तुमने भिल्लकुमारी से विवाह करना अस्वीकार कर दिया था। इससे हम लोगों की मान मर्यादा सुरक्षित रह गयी। परन्तु मैंने सुना है कि इससे वहाँ के भिल्ल तुमसे बहुत ही असन्तुष्ट हो गये हैं। यहाँ आते समय मार्ग में वे

तुम्हारे ऊपर आक्रमण भी कर सकते हैं। इसीलिये तुम्हें अब उनकी ओर से सावधान रहना चाहिये। —प्रसेनजित"

पिता का यह पत्र मिलने के बाद श्रेणिककुमार को भी राजगृही को जाने की इच्छा हुई। उसने धीरे-धीरे तैयारी करनी शुरू कर दी मार्ग में भिल्लों से युद्ध होने की सम्भावना थी इसलिये उसने पहले से ही घुड़सवार और पैदल सैनिकों को उस ओर रवाना कर दिया। इतना सब करने के बाद वह अपनी स्त्री से मिला। उसने उससे कहा—"प्यारी ! मेरे पिता के कई पत्र आ चुके हैं। वे मुझसे मिलने के लिये अत्यन्त उत्सुक हो रहे हैं, इसलिए मैं वहाँ जाना चाहता हूं। मैं यथा सम्भव शीघ्र ही लौट आऊँगा। तब तक तुम यहीं रहो। और अपने पुत्र का प्रेम पूर्वक पालन करो।

पति के यह वचन सुनकर सुनन्दा ने पहले तो उनके साथ जाने की इच्छा प्रकट की। किन्तु जब श्रेणिककुमार ने उसे बहुत कुछ समझाया बुझाया, तब वह वहीं पितृ-गृह में रहने को राजी हो गयी। उसने कहा—प्यारे ! यदि आप मुझे अपने साथ नहीं ले जाना चाहते तो न सही, परन्तु यह तो बतलाइये, कि यदि आप न आये और पुत्र ने बड़े होने पर आपका नाम व पता आदि पूछा, तो मैं उसे क्या उत्तर दूँगी ?

श्रेणिककुमार ने कहा—हाँ, तुम्हारा यह पूछना उचित है। मैं एक कागज पर अपना नाम पता लिखे देता हूँ। काम पड़ने पर तुम उसे दिखा सकती हो।

इतना कह श्रेणिककुमार ने एक कागज पर यह लिख दिया कि श्रेणिककुमार, राजगृह नगर।

यह कागज उसने सुनन्दा के हाथ में देते हुए कहा—मेरा पता लगाने के लिये इतना ही काफी है।

इसके बाद वह चुपचाप बेन्नातट से चल पड़ा और शीघ्र ही मार्ग में अपने सैनिकों से जा मिला। यहाँ से आगे बढ़ने पर शीघ्र ही उन्हें भिल्लराज का राज्य मिला। श्रेणिककुमार ने भंभा बजाकर भिल्लराज को युद्ध के लिए चुनौती दी। भिल्लराज ने उसे स्वीकार कर लिया। उसने भी रणसिंघा बजाकर भिल्लों को एकत्र किया। और श्रेणिककुमार के सामने आ डटा। उसने श्रेणिक-कुमार पर विष के बुझे बाण चलाने आरम्भ किये, परन्तु श्रेणिक-कुमार के पास तो अंग-रक्षक रत्न था, इसलिए उसके प्रभाव से वे सभी बेकार हो गए। दूसरी ओर श्रेणिककुमार की सेना ने तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग कर भिल्लों के दाँत खट्टे कर दिए। थोड़ी ही देर में वे हिम्मत हारकर एक ओर को भाग चले। भिल्लराज जीता ही कैद कर लिया गया। उसने श्रेणिककुमार की अधीनता स्वीकार कर ली। अधीनता स्वीकार करने पर श्रेणिक-कुमार ने उसे बन्धन-मुक्त कर दिया।

वह अपने सवा लाख भिल्लों के साथ श्रेणिककुमार को राजगृही पहुंचाने चला। भिल्लराज की इस सहायता से राजगृही का कठिन मार्ग सहज बन गया।

रास्ते में यदि कहीं टीले या ऊँची नीची जमीन मिलती तो सवा लाख भिल्ल उसे खोद खादकर बात की बात में मैदान बना देते। छोटे-मोटे नदी नाले तो उनके लिए कोई चीज ही न थी। बड़ी-बड़ी नदियाँ भी वे बात की बात में पार कर जाते थे। इस प्रकार लम्बा रास्ता तय करके कुछ ही दिनों में श्रेणिककुमार दलबल सहित राजगृही में जा पहुंचा।

राजगृही में श्रेणिककुमार बड़ प्रेम से अपने माता-पिता और भाइयों से मिला। उन्हें भी उसे देखकर असीम आनन्द हुआ। राजा प्रसेनजित तो पहले ही उसके अद्भुत गुणों का परिचय पा चुके थे। उसके भाई भी अब उसकी अपूर्व प्रतिभा के कायल हो गये।

राजा प्रसेनजित ने श्रेणिक कुमार को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर उसे अपने सिंहासन पर आरूढ़ कराया। उनकी सलाह से अन्य भाइयों ने भी अपना-अपना राज्य उसे सौंपकर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार राजगृही के विशाल साम्राज्य पर श्रेणिककुमार का एकाधिपत्य हो गया।

अपने योग्य पुत्र को अपना राज्य सौंपने के बाद राजा प्रसेनजित ने दीक्षा अंगीकार कर ली। भिल्ल राजा पर भी इसका कुछ प्रभाव पड़ा और उसने भी राजा प्रसेनजित का अनुकरण किया। उसकी समस्त सेना अभी तक राजगृही में ही पड़ाव डाले पड़ी हुई थी। श्रेणिक राजा ने भिल्लराज के पुत्र को बुलाकर उसे उसके पिता का राज्य सौंप दिया। इससे वह सदा के लिए श्रेणिक

राजा का अहसानमन्द बन गया। श्रेणिक राजा ने कई दिन अपने यहाँ रखने के बाद, सेना सहित उसे उसके देश को विदा कर दिया।

इसके बाद राजा श्रेणिक ने अपना सारा ध्यान अपनी शक्ति बढ़ाने की ओर लगाया। उसने भाइयों को सहायता से अपने पिता के समस्त शत्रुओं को पराजित कर उनसे अपनी अधीनता स्वीकार करायी। इस प्रकार साम्राज्य का विस्तार करने के बाद उसने अपने राज्य में शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने की ओर अपना ध्यान लगाया।

—※—

अंकुश

जिस प्रकार फीलवान् अपने हाथ में प्रतिक्षण अंकुश लिये रहता है। और उसका ध्यान भी केन्द्रित रहता है हाथी कहीं उन्मुक्त होकर इधर-उधर भाग न जाये, उन्मार्ग की ओर चला न जाये, ज्यों ही वह उत्पथ पर बढ़ता है तो वह उसपर अंकुश का प्रहार करता है,–अंकुश लगते ही वह नियन्त्रित हो जाता है और गंतव्य मार्ग की ओर चलने लगता है। इसी प्रकार तन-मन और इन्द्रियाँ इधर-उधर बहकने-भटकने लगती हैं, तो संयमी साधक उन पर संयम का अंकुश लगाता है जिससे उनका जीवन आलोकित हो उठता है।

विभिन्न धर्मों में मांसाहार का विरोध

हे अग्नि ! मांसाहारी को तू भस्म कर दे ।

—ऋग्वेद

जो लोग मांस खाते हैं, मैं उन दुष्टों का नाश करता हूं ।

—अथर्ववेद

मांसाहार से कोढ़ जैसे अनेक रोग फूट पड़ते हैं, शरीर में खतरनाक कीड़े एवं जन्तु उत्पन्न होते हैं । अतः मांसाहार का त्याग करें ।

—भगवान बुद्ध

जो व्यक्ति मांस, मछली और मदिरा का सेवन करते हैं, उनका धर्म-कर्म, जप-तप सब नष्ट हो जाता है ।

—गुरु ग्रन्थ साहब

मैं मर जाना पसन्द करूंगा, परन्तु मांस कदापि नहीं खाऊँगा । पशुओं का मांस खाना घोर नैतिक पतन है । चाहे कुछ भी हो, धर्म हमें अण्डे, मछली, मांस खाने की आज्ञा बिलकुल नहीं देता ।

—महात्मा गांधी

मांस का प्रचार करने वाले सब राक्षसों के समान हैं । वेदों में कहीं भी मांस खाने का उल्लेख नहीं है ।

—दयानन्द सरस्वती

(९)

राजगृही में (अभयकुमार का आगमन)

श्रेणिक ने अपना शासन कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए सब मिलाकर ४९९ मन्त्रियों को नियुक्त किया। उन सबों के ऊपर उसने प्रधान मन्त्री का एक पद रक्खा। परन्तु उसे इस पद के लिये उपयुक्त मन्त्री न मिला। इस पद पर वह किसी श्रेष्ठ निरहंकारी विनयी धर्मनिष्ठ और बुद्धिमान् पुरुष को नियुक्त करना चाहता था। इसीलिये उसने स्थिर किया कि जब तक इस पद के उपयुक्त कोई मनुष्य न मिला, तब तक वह स्वयं प्रधान मन्त्री का कार्य करता रहेगा, ताकि राज-काज में किसी प्रकार की विश्रृंखलता उत्पन्न न हो। परन्तु इस तरह बहुत दिनों तक काम चलाना असम्भव था।

यद्यपि प्रधान मन्त्री के पद के लिये नित्य ही नये-नये उम्मीदवार आया करते थे, परन्तु राजा श्रेणिक की कसौटी पर वे खरे न साबित होते थे। इसी तरह कई वर्ष बीत गये, परन्तु यह पद खाली का खाली ही बना रहा। अन्त में श्रेणिक ने एक नयी घोषणा प्रकाशित की। उसने एक निर्जल कुँए में अपनी अँगूठी डालकर कहा—"जो मनुष्य इस कुँए के बाहर से अपने बुद्धि-बल द्वारा यह अँगूठी निकालकर पहिनेगा उसे मैं न केवल अपना प्रधान मन्त्री ही नियुक्त करूँगा। बल्कि आधा राज्य भी दे दूँगा।"

महाराजा श्रेणिक की इस घोषणा का समाचार सुनकर दूर-दूर से बुद्धिमानों के दल आ आकर अपना भाग्य आजमाने लगे। राजा श्रेणिक के मन्त्रियों ने भी बहुत चेष्टा की, परन्तु किसी को भी इस कार्य में सफलता न मिल सकी। कुँए पर रात दिन राजा के आदमियों का पहरा रहता था। जो भी वहाँ आता, वह कुँए में झाँक कर देखता। महाराजा श्रेणिक की अँगूठी कुँए के मध्य भाग में पड़ी हुई थी। वह बाहर से स्पष्ट दिखायी देती थी, परन्तु उसे किस प्रकार बाहर निकालना चाहिये यह किसी की समझ में न आता था।

लोग बड़ उत्साह के साथ वहाँ आते, तरह-तरह की युक्तियाँ सोचते, परन्तु कोई उपाय न चलने पर अन्त में निराश होकर लौट जाते थे। उधर बेन्नातट में अभयकुमार दिन प्रतिदिन बड़ा होता जाता था। जब उसकी अवस्था कुछ बड़ी हुई, तो पढ़ने के लिए पाठशाला में बैठाया गया। उसकी बुद्धि बहुत ही तेज थी, इसलिये अल्प समय में ही वह अनेक विद्या और कलाओं में पारगत हो गया। एक दिन पाठशाला में सहपाठियों से कुछ वाद विवाद हो गया। उस समय किसी ने उसे ताना मारते हुए कहा—यह तो बिना बाप का है—इसके बाप का तो कोई पता ही नहीं। अभयकुमार के हृदय में यह शब्द तीर की तरह चुभ गये। वह बहुत ही उदास हो गया और उसी समय पाठशाला से घर चला आया उसकी यह अवस्था देखकर, माता उसके पास दौड़ आयी। उसने उसकी उदासी का कारण पूछा। उत्तर में अभयकुमार ने

पाठशाला के बालकों की घटना कह सुनायी। साथ ही माता से पूछा—"माताजी ? मेरे पिता कहाँ हैं।

माता ने कहा—"बेटा ? जब तू बहुत छोटा था, तब वे अचानक एक दिन विदेश चले गये थे। तब न तो उनका कोई पत्र ही आया न कोई समाचार ही मिला।

अभयकुमार ने पूछा— चलते समय क्या वे कुछ कह गये थे अपना पता आदि लिखकर दे गये थे !'

माता ने कहा—"हाँ, वे एक कागज पर अपना पता तो लिख गये थे। देख मैं अभी उसे लिये आती हूँ।" इतना कह सुनंदा एक पेटी से वह पर्चा निकाल लायी, जो श्रेणिककुमार उसे चलते समय दे गया था। अभयकुमार ने उसे पढ़ा। पढ़ते ही उसका चेहरा आनन्द से खिल उठा। उसने कहा—माताजी ? इतना ही पता काफी है। अब मैं आसानी से उनका पता लगा लूँगा।

इसके बाद शीघ्र ही अभयकुमार ने राजगृह जाने की तैयारी की। उसकी माता और उसके नान्नो नाना ने उसे रोकने की बहुत ही चेष्टा की, उन्होंने उसे समझाया कि तुम्हें राजगृही जाने की जरूरत नहीं वे किसी आदमी को भेजकर स्वयं पता लगवा देंगे। परन्तु उनकी इन बातों का उस पर कोई प्रभाव न पड़ा। वह यथा समय अकेला ही राजगृही जाने के लिये तैयार हुआ। इससे उसकी माता विचलित हो उठी। उसने अपने पिता धनपति से कहा—"पिताजी ! मैं भी अभयकुमार के साथ राज-

गृही जाऊँगी।" यह सुनकर धनपति ने उसे भी बहुत समझाया, बुझाया, परन्तु जब वह न मानी तो उसने सबकी यात्रा के लिए समुचित प्रबन्ध कर दिया। शीघ्र ही अभयकुमार अपनी माता और कई अनुचरों के साथ राजगृही के लिए रवाना हुआ।

कुछ दिनों के बाद वे सब राजगृही जा पहुंचे। वहाँ नगर के बाहर एक उद्यान में माता और अनुचरों को छोड़कर अभयकुमार नगर की ओर चला। उसने सोचा था कि पिता का पता लग जाने पर या नगर में कहीं ठहरने का ठिकाना हो जाने पर उन्हें लिवा लाऊँगा। नगर के समीप पहुंचने पर अभयकुमार को वह कुँआ दिखायी दिया जिसमें श्रेणिक राजा ने अंगूठी डाली थी। उस पर बड़ी भीड़ लगी हुई थी। कौतूहल वश अभयकुमार भी वहाँ जा खड़ा हुआ। पहरेदारों से पूछने पर उन्होंने उसे सारा हाल बतलाया। अभयकुमार ने कहा—अहो ! यह कौनसा बड़ा मुश्किल काम है ? इसे तो मैं बड़ी आसानी से कर सकता हूँ।

पहरेदारों ने कहा—"तब तो बड़ी अच्छी बात है। आप भी आज ही अपना भाग्य आजमाइये। यदि आपको इसमें सफलता मिलेगी तो हमारे महाराज निःसन्देह आपको प्रधानमन्त्री बनायेंगे और अपना आधा राज्य भी दे देंगे। लेकिन हमें आपकी बात पर विश्वास नहीं होता। जिस काम को बुद्धिमानी का दावा रखने वाले बड़े से बड़े आदमी भी अब तक नहीं कर सके। उसे तुम कर सकोगे या नहीं। इसमें सन्देह है।

अभयकुमार ने उच्च स्वर से पुकार कर कहा—यह काम मेरे लिये बाँये हाथ का खेल है। मैं अभी आप लोगों के सामने इसे कर दिखाऊँगा। परन्तु अभी भी, मेरे पहिले जिसकी इच्छा हो वह अपना भाग्य आजमा ले। पश्चात् कोई न कहे कि ऐसा तो हम भी कर सकते थे। अभयकुमार की इन बातों का किसी ने कोई उत्तर न दिया। पहरेदारों ने कहा—यह कोई आज की बात नहीं है। बरसों से यह अँगूठी इसी कुँए में पड़ी है। परन्तु किसी को इसे निकालने की तरकीब नहीं सूझती।

हजारों आदमी अब तक निराश हो चुके हैं। यदि आप निकाल सकें तो सहर्ष चेष्टा कीजिये। आपसे कोई कुछ न कहेगा। पहरेदारों की यह बात सुनकर अभयकुमार ने उस मुद्रिका को बाहर निकालने का उद्योग आरम्भ किया। सबसे पहले वह थोड़ा सा गोबर ले आया और कुँए की पाल पर से ही उसे इस तरह कुँए के अन्दर फेंका कि वह उस अंगूठी पर जा गिरा और वह अंगूठी उसमें चिपक गयी। इसके बाद उसने आग सुलगा कर उसके बड़े-बड़े अँगारे उस गोबर के आस-पास फेंक दिये। उनकी आँच से शीघ्र ही वह गोबर सूख गया। इतना काम करने के बाद अभयकुमार ने समीप के तालाब से लेकर उस कुँए तक एक नाली खोद दी। उस नाली द्वारा तालाब का पानी कुँए में आकर भरने लगा। कुछ ही देर में वह कुंआ ऊपर तक पानी से भर गया। लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा कि वह सूखा गोबर पानी के ऊपर तैर रहा है। अभयकुमार ने शीघ्र ही उसे उठा लिया। उसमें वह अगूठी

अब तक चिपकी हुई थी। उसे साफ कर उसने तुरन्त अपनी ऊंगली में पहन लिया यह देखकर लोगों ने दाँतों तले ऊंगली दबा ली। युक्ति तो बड़ी सहज थी, एक प्रकार से बच्चों का खेल था, परन्तु किसी के ध्यान में पहिले यह बात न आ सकी।

राज कर्मचारियों ने जय-जयकार कर, अभयकुमार का स्वागत किया। शीघ्र ही यह समाचार राजा श्रेणिक के पास पहुंच गया। श्रेणिक राजा ने अभयकुमार को अपने पास बुलाया और बड़ आदर के साथ अपने पास बैठाया। उसकी छोटी अवस्था, सुन्दर रूप और विचक्षण बुद्धि का उस पर बहुत ही प्रभाव पड़ा। उसने पूछा—'हे कुमार! तुम कौन हो और तुम्हारे पिता का क्या नाम है?

अभयकुमार ने उत्तर दिया—मैं क्षत्रिय हूं और मेरे पिता का नाम प्रजापाल है। श्रेणिक ने पूछा—तुम कहां रहते हो? अभयकुमार ने कहा—मैं बेन्नातट नगर में रहता हूं। श्रेणिक ने पूछा—"वहाँ पर धनपति नामक एक सेठ और सुनन्दा नामक उसकी एक पुत्री है। क्या तुम उनको जानते हो?

अभयकुमार—'जी हाँ, मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूं।'

राजा श्रेणिक—सुनन्दा के शायद एक पुत्र भी था?

अभयकुमार—जी हाँ, उसका नाम अभयकुमार है।

❖

(१०)

अभयकुमार कैसा है ?

वो कितने साल का होगा ? मेरे जितना ही होगा । रूप में, लावण्य में, मेरे समान ही है तेरा और उसका कोई परिचय है ? हाँ मेरी मैत्री है, उसके साथ । उसके बिना मैं एक क्षण भी नहीं रह सकता । तो उसको छोड़के यहाँ क्यों आया ? नहीं-नहीं मैं छोड़के नहीं आया वो तो मेरे साथ ही आया है । वो कहाँ है ?

उसकी माता के साथ वो उद्यान में है । राजा शीघ्र ही उठकर उसके पीछे पीछे-चला जाता है । लोग कहने लगे छोटा लेकिन कितना होशियार है । राजा को अपने पीछे-पीछे ले जाता है ।

उद्यान में जाकर राजा ने अपनी प्रिया के साथ मिलन किया और अपने पुत्र की पृच्छा करने लगे, कहाँ है ?

प्रिया ने बताया यही आपका पुत्र है । पुत्र की तरफ नजर करते हुए कहा-क्यों झूठ बोला ?

अभय ने कहा—मैं तो सदा माता के दिल में रहने वला हूँ। मीठी-मीठी वाणी से खुश हुए राजा ने पुत्र को निज अंक में बैठाया।

राजा ने पट्ट हस्ति को मंगवाया और धूम धाम से पत्नि-पुत्र का नगर प्रवेश कराया और राज-महल में ले गया ।

राजसभा में बुलाकर ससम्मान प्रधान मंत्री के रूप में नियुक्त किया और मन्त्रीशवर अभयकुमार को बुद्धिबल से अनेक देशों पर विजय प्राप्त की ।

एक दिन साधु—साध्वियों से युक्त ऐसे महावीर प्रभु के समवसरण में शांत-दांत-कृषांग वाले इन्द्रिय निग्रह वाले महर्षि को देखकर अभयकुमार ने कहा—हे प्रभु ! ये महर्षि कौन हैं ?

पूर्व दिशा में वीत भय नाम का नगर है जो स्वर्ग के समान है, उसमें उद्रयन नाम का राजा था वह न्यायनिष्ठ था। उसी नगर में मेरा समवसरण लगा और राजा उद्रयन उपदेश और वन्दन हेतु आया।

मैंने उपदेश सुनाना प्रारम्भ किया— जिनके पास शाश्वत धर्म और दशन है उनके निवास को लक्ष्मी कभी छोड़ती नहीं यानि लक्ष्मी की सदैव मेहर रहती है। धर्म के प्रभाव से मानव सदा उत्तरोत्तर सुख प्राप्त करता है। मनुष्य जन्म प्राप्त कर जो मानव धर्म नहीं करता, वह मोहांध जीव कृतघ्न होता है। धर्म जो साधता है, आराधता है, अनुमोदता है उसकी सात पीढ़ी सुखी रहती है। धर्म ही बांधव है, धर्म ही मित्र है, धर्म ऋद्धि, सिद्धि, समृद्धिदायक है। संसार में देखो तो सही, जहाँ देखो वहाँ दुःख है। गर्भावस्था में दुःख, बाल्यावस्था में दुःख, तरुणावस्था में दुःख, वृद्धावस्था में भी दुःख। संसार निसार है निराधार है और जो सुख दिखता है वह संध्या के समान क्षणिक है। बुद-बुदा के समान अल्पजीवी है नदी के वेग समान युवावस्था है, अतः भव्य जीव बोध पाम! बोध पाम!

उपदेश सुनकर जिसका प्रथम से ही मन वैरागी था वह और विशेष वैरागी बनकर अपने बहन के पुत्र केशी को राज्य

सिंहासन पर आरूढ़ कर दीक्षा स्वीकार की। आराधना-साधना से इसी भव में मोक्ष में जाने वाला राजर्षि होगा।

अभयकुमार ने कहा—इसके बाद मोक्ष में जाने वाला कोई राजर्षि होगा ?

नहीं-नहीं उदयन राजर्षि अन्तिम राजर्षि ही होगा।

अभयकुमार वन्दन कर राज महल में गये और अपने पिताजी से विनंति करने लगे—मुझे दीक्षा लेने की अनुमति प्रदान कीजिये, जिससे दीक्षा स्वीकार कर कर्मों का नाश कर मुक्ति में चला जाऊँ ?

श्रेणिक ने कहा—अरे ! दीक्षा लेने का समय तो मेरा है। तुझे तो अभी राजा बनना है, राज्य का विस्तार करना है तुझे अभी ऐसा विचार क्यों आया ?

पिताजी ! आपका पुत्र होकर यदि मैं दीक्षा न लूं तो आपका नाम और आपका कुल दोनों हीन कहलायेंगे और मेरे जैसा दुर्भागी कौन होगा ?

राजा ने कहा—ठीक है। यदि मैं तुझे क्रोधावेश में आकर कहूं "तू चला जा तेरा काला मुख मत दिखा" तभी तूं दीक्षा ग्रहण करना पितृ भक्त अभय ने पिताजी का वचन स्वीकार किया और अपनी बुद्धि बल से अनेक अशक्य कार्य करने लगा। पिता की सेवा में निरन्तर रहने लगा।

शीत ऋतु आयी। शीत बढ़ने लगी। लोग अति दुःखित होने लगे। रात में जब सूर्य नहीं होता तभी शीत में अग्नि और

ज्यादा प्रिय लगने लगी। उद्यान में पुष्प भी पांच-छः की संख्या में रहने लगे।

कलियुग भी शीत ऋतु के समान है। शीतता आने से जड़ता बढ़ती है, इसलिए अग्नि जैसे दुष्ट मनुष्यों का मान बढ़ता है, बालक जैसे अज्ञानी की बात मानते हैं, सज्जन तो इन्हें मिले ही रहेंगे।

शीत ऋतु में प्रभू श्री महावीर राजगृह में पधारे तभी चेलणा रानी आदि परिवार सहित श्रेणिक राजा प्रभू के वन्दन तथा उपदेश सुनने हेतु आये। सुनकर जब वापस आ रहे थे तभी नदी के तीर में एक शांत-दांत, त्यागी-वैरागी, तपस्वी-तेजस्वी मुनि कायोत्सर्ग में स्थित थे। चेलणा आदि ने मुनि को वन्दन किया और गृह में आकर संध्या समय की जिन पूजा कर रात्रि में सो गये।

चारों ओर शीत ऋतु ने अपना साम्राज्य जमा दिया है। श्रेणिक को नींद आ गयी लेकिन चेलणा ठण्डी की वजह से नींद में से जाग गई। जागते ही सोचने लगी—मैं तो राजमहल में सोयी हुई हूं, खिड़की, द्वार आदि बन्द है, रजाई आदि ओढ़कर सोयी हुई हू तो भी ठण्डी-शीतता कैसी लगती है मानों कि प्राण हरने वाली हो। ऐसी ठण्डी में नदी के तीर कायोत्सर्ग में खड़े मुनि याद आ गये और जोर से बोली—

अहाहा! उनका क्या होता होगा? यह शब्द सुनते ही श्रेणिक के मन में संशय ने जन्म लिया—अरे! यह चेलणा को तो

मैं महासती समझता था लेकिन आज मुझे मालूम पड़ा कि इसके मनमें तो और कोई पुरुष रमता है, और कोई यार है, जिसकी यह चिन्ता कर रही है।

संशय से संतप्त श्रेणिक को नींद अंगूठा बता रही थी। इधर-उधर करवटें बदल रहा था, इतने में तो पूर्व दिशा में सूर्य उदित हुआ। अभयकुमार को बुलाया गया और कहा –

मेरा अन्तःपुर दुराचारी है अतः उसको जलाकर राख बना दो। क्रोधावेश पिता के वचन को स्वीकार किया और वचन के पालन हेतु उपाय सोचने लगा—

श्रेणिक प्रातः में वीर प्रभू के उपदेश सुनने गये। उपदेश के पश्चात् श्रेणिक ने प्रभू से पूछा—हे प्रभू ! मेरी सभी पत्नियाँ सती हैं या असती ? राजन्—चेलणा आदि सभी स्त्रियाँ सती हैं। प्रभू के पास से वापस आये।

अभयकुमार ने सोचा—मेरे पिता ने तो आदेश दिया लेकिन मुझे तो मेरी बुद्धि का उपयोग कर रास्ता निकालना चाहिये—"साँप मरे नहीं और लकड़ी टूटे नहीं" घर में से उत्तम-उत्तम वस्तु निकालकर चारों ओर से घिरी आग लगा दी पश्चात् समवसरण में जाने लगा। रास्ते में श्रेणिक मिले और दूर से आग देखी।

अभयकुमार ने कहा –आपके आदेश का पालन किया और अन्तःपुर जला दिया।

क्रोधावेश में आकर श्रेणिक ने कहा—बुद्धि का बादशाह जैसा तूं बुद्धि का बारदान बन गया। जा-जा तेरा काला मुख मुझे मत बताना। यहाँ से चला जा।

अभयकुमार को तो खीचड़ी में घी गिरा ऐसा हो गया, श्रेणिक कहे और दीक्षा मिले ऐसा सोचकर शीघ्र समवसरण में जाकर प्रभु श्री महावीर के पास दीक्षा अंगीकार की। अहाहा ! धन्य है अभयकुमार को, उनके वैराग्य को।

श्रेणिक राज महल में आया और देखा तो उज्जड़, निःसार घर जला था। अरे रे ! अभयकुमार ने तो मुझे ठग लिया और मैंने असत्य क्रोध किया। अब तो जल्दी समवसरण में जाकर अभयकुमार को समझाकर घर ल आऊँ।

श्रेणिक जब समवसरण में पहुंचा तब तो महामन्त्री अभयकुमार को महामुनि अभयकुमार के रूप में देखा। खिन्न मन से क्षमापना कर, वन्दना कर, उदासी मन से राज महल में आया।

अभयकुमार तो अपनी साधना में आराधना में अनुरक्त बन गये। 'क्या दिन क्या रात अपने में मस्त अपने तप-त्याग में मग्न रहने लगे।

इसी प्रकार आराधना में आयुष्य पूर्ण कर संयम के प्रभाव से स्वर्ग में तैतीस सागरोपम का आयुष्यु पूर्ण कर, च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में अवतार लेकर गुरु के पास संयम स्वीकार कर आठ कर्म को खपाकर सिद्ध-बुद्ध होकर मुक्ति में जायेंगे।

ऐसे महामुनिश्वर बुद्धि निधान अभयकुमार को शतशः वन्दन.................!